प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मन्त्री,
सस्ता-साहित्य मण्डल, अजमेर।

लागत का ब्योरा	
कागज	२००)
छपाई	२१०)
बाइंडिंग	३७)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	३०३)
कुल जोड़	७५०)
प्रतियाँ २१००	
एक प्रति का मूल्य	।=)

मुद्रक—
जीतमल लूणिया,
स्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर
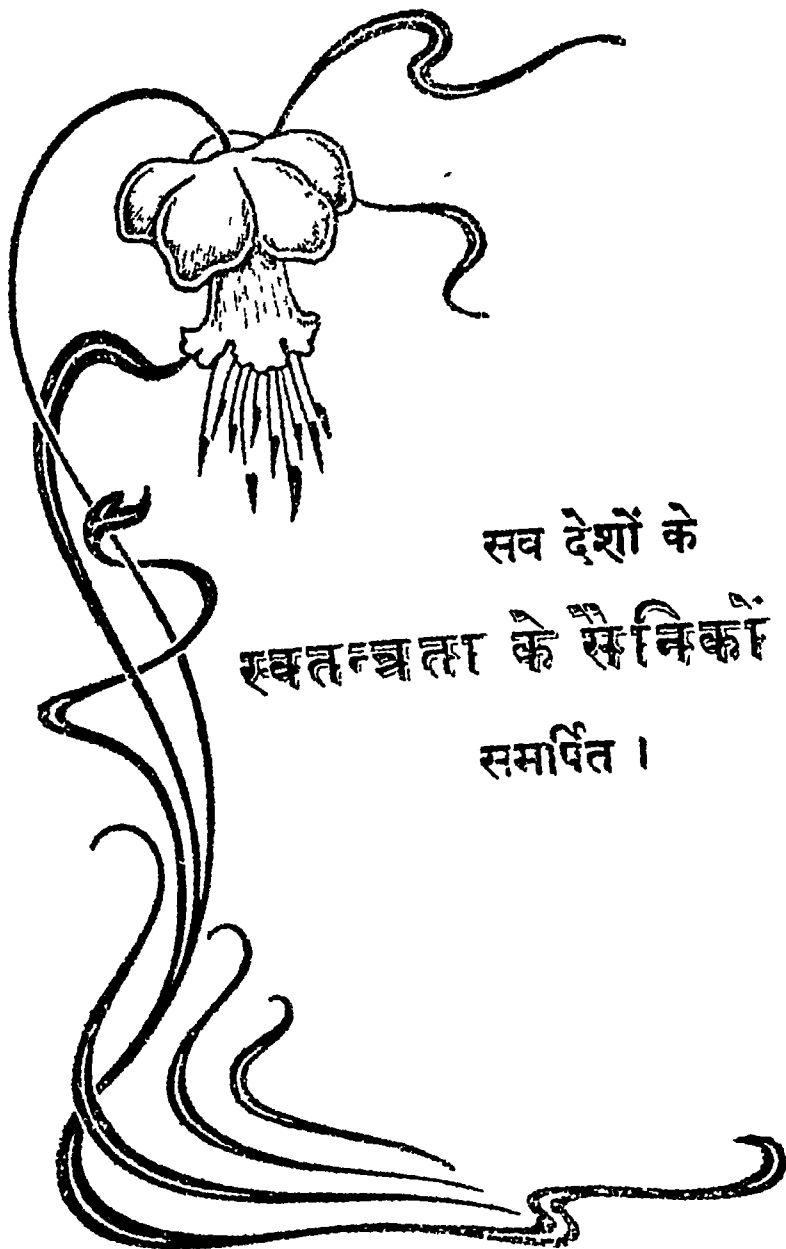
सब देशों के

स्वतन्त्रता के सैनिकों को

समर्पित ।

निवेदन

दो साल हुए मेरे पास आयर्लैण्ड से Principles of Faee-dom नामक पुस्तक आयी। इसे पढ़ते ही तबीयत ने कहा इसका अनुवाद कर डालो जिससे हिन्दी-भाषा-भाषी देशबन्धु भी इससे शिक्षा और आनन्द प्राप्त करें; किन्तु बुद्धि ने कहा तुम अयोग्य हो, तुम्हें भाषा का ज्ञान नहीं, साहित्य का संग नही और देशभक्ति से बहुत दूर रहते हो इसलिए यह काम दूसरे योग्य लेखक पर छोड़ दो। मैंने थोड़ा अनुवाद कर लिया था, बस आगे बढ़ना उचित न समझा, हाथ खींच लिया। किन्तु इधर भारत अंग्रेजी पुस्तक प्रायः डेढ़ साल से बिक रही है तो भी किसी विद्वान् का ध्यान इस ओर न गया। इसलिए मैंने दुस्साहस किया कि टूटे-फूटे शब्दों में पुस्तक का भाव उन भाइयों के सामने रख दूं जो स्वाधीनता के उपासक हैं। मेरी धृष्टता का यही कारण है। मै यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मुझे हिन्दी भाषा और उसके व्याकरण का ज्ञान नही है। इसलिए इसमें त्रुटियोंका रहना स्वाभाविक है।

विषय-सूची

इस पुस्तक मे कई अंश छोड़ दिये गये हैं। जो अंश केवल आयर्लैंएड से ही सम्बन्ध रखते थे उनकी हिन्दी पुस्तक में कुछ भी आवश्यकता नहीं समझी गई। मैक्स्विनी का जीवन-चरित्र भी इसमे जोड़ दिया गया है। अभी तक जो चरित्र पत्रों मे छपे हैं उनमें ठीक-ठीक बातें नहीं आयीं। अत आशा है, पाठक इस जीवन-चरित्र से भी लाभ उठायेंगे। अन्त मे मैं यही निवेदन करूँगा कि पुस्तक में जो दोष हैं उनका जिम्मेवार पढ़ने-वाले मुझे समझें, जो गुण हैं वे मैक्स्विनी की लेखनी के हैं। वंदेमातरम्।

अनुवादक

टेरेन्स मैक्स्विनी की संक्षिप्त जीवनी
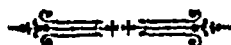
१—बाल्य काल

कार्क के लार्ड मेयर टेरेन्स मैक्स्विनी संसार के उन थोड़े महात्माओं में से हैं जो मरी हुई जाति के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर उसे नया जीवन दे जाते हैं। जिस देश में मैक्स्विनी पैदा हुए वह भारत के समान आत्मसम्मान-रहित तथा चरित्रभ्रष्ट देश नहीं है। आयर्लैण्ड में प्रायः ३०० साल से स्वाधीनता का युद्ध चल रहा है। इस अवधि में वहां कई वीर ऐसे पैदा हुए हैं, जिन्हे पाकर कोई भी जाति गर्व कर सकती है। टोन, वुउल्फ, मिचल, माइकेल डेविट आदि स्वाधीनता के उपासक जिस भूमि में जन्मे हैं, वह धन्य है। जिस जाति के लिए इमन डे वेलेरा, काउन्टेस मार्केविग्ज, ओकेनल सरीखे नेता लड़े और लड़ रहे हैं वह गुलाम नहीं रह सकती। किन्तु जिस राष्ट्र ने एक टेरेन्स मैक्स्विनी को जन्म दिया है, वह ससार भर को स्वतन्त्रता का पथ दिखाने का दम भर सकता है।

टेरेन्स मैक्स्विनी १८७९ ई० की २८ वीं मार्च को कार्क नगर में पैदा हुए। बचपन में ही उनके पिता मर गये। इससे सारे परिवार के पालन-पोषण का भार उनकी माता के सिर पड़ा। इस वीर महिला ने अपना धर्म निबाहा। मैक्स्विनी को बचपन से ही

राष्ट्रीय शिक्षा मिली। आयर्लैण्ड में उन दिनों रेडमण्ड के दल का प्रभुत्व होने के कारण यद्यपि देश में मनुष्यता कम रह गयी थी, तौभी इधर-उधर कई लोग स्वतन्त्रता के भावों को हृदय के अन्दर ढककर हिफाजत के साथ बचाये हुए थे। कार्क नगर में ऐसे बहुत-से लोग बसते थे। उन दिनों वहां यह एक रिवाजसा पड़ गया था कि छोटे बच्चे सप्ताह भर में कोई-न-कोई कविता याद करते थे और रविवार के दिन अपने माता-पिता को सुनाया करते थे। कविता राष्ट्रीय होती थी। उसमें विद्रोह के भाव जितने अधिक होते थे, उतनी ही अधिक वह पसन्द की जाती थी। मैक्स्विनी के पिता कट्टर देश-भक्त थे। मैक्स्विनी ने उनसे राष्ट्रीयता की शिक्षा ली। मैक्स्विनी ने अपनी माता से भी कई गुण सीखे। आध्यात्मिकता, भगवान पर अटल विश्वास और धर्म में दृढ़ भक्ति—ये गुण उन्हे अपनी माता से मिले थे।

उन्हें पाठशाला की शिक्षा भी अच्छी मिली थी। उस समय आयर्लैंड में हजारों राष्ट्रीय विद्यालय थे। उनका एक संघ भी था, किन्तु इनकी हालत आधुनिक भारत के राष्ट्रीय स्कूलो से कुछ ही अच्छी थी। राष्ट्रीय विद्यालयों की यह दुर्दशा देखकर जाति के कई शिक्षा-प्रेमी हितैषियो ने अपनी पाठशालाये अलग खोल रक्खी थी। कार्क में कुछ रोमन कैथलिक पादरियो ने ऐसी कई पाठशालायें स्थापित कर रक्खी थीं। ये उन राष्ट्रीय पाठशालाओं से कई दर्जे अच्छी थीं जो चन्दा वसूल करना और लड़कों को बिगाड़ना अपना धर्म समझती हैं! मैक्स्विनी ने इन देश के दुःख से दुखी पादरियों की पाठशाला मे शिक्षा पायी। ये देश-प्रेमी धर्मात्मा अपनी स्वतन्त्र पुस्तकें पढ़ाते थे, किन्तु इण्टरमिडियट दर्जे

में बोर्ड द्वारा निर्धारित इतिहास की कुछ रद्दी किताबें पढ़ानी पड़ती थीं। ये लाचार होकर उन्हें पढ़ाते थे, किन्तु अगर-मगर के साथ यह बताते थे कि इन इतिहासों में जाति के विरुद्ध कौन-कौन सी झूठी बातें लिखी गयी हैं, इन झूठी बातों के लिखने से लेखक को क्या लाभ हुआ है, और छात्रों को क्या हानि होगी, आदि। ऐसे स्कूल में मैक्स्विनी की राष्ट्रीयता का बढ़ना स्वाभाविक ही था। उन दिनों मैक्स्विनी सदा अपने देश के ध्यान में मग्न रहता था। वह योजनायें बनाया करता था और ये योजनायें देशोद्धार की होती थीं। उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि जन्म से ही उसे मातृभूमि की लगन थी। एक बार उसके घर में राकफेलर की अतुल सम्पत्ति की चर्चा छिड़ी। सबसे पूछा गया कि यदि तुम्हारे पास इतना धन होता तो तुम क्या करते? जब मैक्स्विनी की बारी आई, तो उसने गम्भीरता-से उत्तर दिया "मैं आयर्लैण्ड को स्वाधीन करता।" दर्जे में जब आयरिश इतिहास पर वादविवाद होता था, तो मैक्स्विनी में देश-प्रेम का यह भाव बहुधा स्पष्ट-रूप से दिखाई देता था।

मैक्स्विनी ने १५ साल की उम्र में स्कूल छोड़ दिया और कार्क की डायर एण्ड कंपनी के यहाँ नौकरी कर ली। वह सदा प्रसन्नचित्त और कार्य मे व्यस्त रहता था। मैक्स्विनी को व्यापारिक जीवन पसन्द नहीं था, किन्तु उसकी सदा यह आदत रही कि जो काम हाथ में लेता, उसे पूरा करके छोड़ता। इस लिए वह थोड़े ही दिनों में कम्पनी का खजांची हो गया और सन् १९११ ई० तक यही काम करता रहा। १९११ में वह व्यापार का अध्यापक हुआ। उसे पढ़ने की धुन थी, इस बात की प्रबल इच्छा

थी कि मैं बी० ए० पास कर लूँ। इसलिए वह पढ़ने-लिखने में सदा व्यस्त रहता था। दिन भर आफिस में काम करता, रात को आठ बजे सो जाता और दो बजे रात से उठकर अध्ययन करता। इस प्रकार बड़ी चेष्टा करके सन् १९०७ ई० में उसने बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली।

२—राष्ट्रीयता का उदय

मैक्स्विनी पाठशाला छोड़ने के समय से ही विचार कर रहा था कि कौन दल देश का उद्धार कर सकता है। उस समय फीनियन दल ध्वंसावशेष सा था। यह दल आयर्लैंड को स्वाधीन न कर सका था, किन्तु इसके सदस्यों को विश्वास था कि इस पीढ़ी में न सही, दूसरी पीढ़ी मे भी न सही, कभी-न कभी तो आयर्लैंड प्रजा-तन्त्रवादी स्वतन्त्र राष्ट्र बनेगा ही। मैक्स्विनी का यद्यपि यह विश्वास था कि राष्ट्र का स्वाधीन करने का काम शीघ्र आरंभ करना चाहिए, तौभी वह कुछ कुछ इसी दल मे मिला। १८९९ ई० में इन्होंने 'यंग आयर्लैंड सोसाइटी' खोली। यह नवयुवक-दल-रचनात्मक कार्य, देशी भाषा का प्रचार, आयरिश उद्योग-धन्धो का पोषण और ब्रिटिश फौज मे आयरिश सिपाहियों को भरती न होने देने का उद्योग करना चाहता था। इसी बीच सिनफिन आन्दोलन का जन्म हो रहा था। १८९९ ई० मे श्री आर्थर ग्रिफिथ ने 'यूनाइटेड आयरिशमन' नामक पत्र निकाला। इस पत्र के द्वारा वे सब सम्मतियाँ संघ-बद्ध कर ली गईं, जो इंगलैंण्ड से अलग होना और खुलेआम आयरिश स्वतंत्रता का प्रचार

करना चाहती थीं। इस प्रकार सिनफिन का बीज बोया गया और नीति निर्धारित की गई।

मैक्स्वीनी को यह विश्वास हो गया था कि जब तक आयरिश भाषा देश भर में नहीं फैलेगी, तब तक देश का कुछ काम नहीं हो सकता। 'गेलिक लीग' नामक संस्था उन दिनों आयरिश भाषा का प्रचार कर रही थी। मैक्स्विनी इसमें भरती हो गया। उसने बड़े कड़े परिश्रम से आयरिश भाषा सीखी और देहात में रहकर उसका प्रयोग समझा। १९१० ई० में 'आयरिश फ्रीडम' नामक पत्र निकाला गया। इसने सिनफ़िन दल की नीति भली-भाँति स्पष्ट कर दी। इसमें साफ़-साफ़ लिखा गया कि हम लोग उस विचार-परम्परा को लेकर खड़े हुए हैं जिसे हमारे पहले के नेता हमें दे गये हैं। हम इङ्गलैण्ड और आयर्लैण्ड का पूर्ण विच्छेद चाहते हैं, हम आयरिश प्रजातन्त्र के पक्षपाती हैं। इस पत्र के निकलते ही सब नवयुवक इसकी तरफ हो गये और कहना चाहिए कि सारा आयर्लैण्ड इसी तरफ झुका। मैक्स्विनी भी इसमें था। मैक्स्विनी की पुस्तक 'स्वाधीनता के सिद्धान्त' इसीमें क्रमशः छपी थी। इस समय लोग आश्चर्य करते हैं कि मैक्स्विनी को किस प्रकार आयर्लैण्ड की भावी दशा का ज्ञान पहले ही हो चुका था। किन्तु यह पुस्तक एक-कालिक या एक-देशीय नहीं है। इसके सिद्धान्त सदा सर्वत्र लागू होंगे।

३—आयरिश स्वयंसेवक

आयर्लैण्ड के लिए वह समय बड़े सौभाग्य का था, जब ब्रिटिश सरकार ने अल्स्टरवालों को स्वयंसेवक-दल में भरती

होने का अधिकार दिया। यह रियायत इसलिए की गई थी कि अलूस्टर अंग्रेजी साम्राज्य की छत्रछाया में रहना चाहता था। किन्तु इङ्गलैण्ड के बड़े-बड़े राजनैतिज्ञ यह ऐसी भूल कर बैठे कि उसके लिये वे अब तक पछता रहे हैं। आयर्लैण्ड के नवयुवकों ने इस आज्ञा का स्वागत किया। वे ताड़ गये कि अयर्लैण्ड के लिए अब मौका आ गया है। जब अलूस्टर मे स्वयंसेवक भरती हो सकते थे तो और जगह उन्हें कौन रोक सकता था। बस, धूम मच गई। जो नवयुवक रात दिन सोचा करते थे कि आयर्लैण्ड की सेना किस प्रकार खड़ी की जा सकती है वे हर्ष से नाचने लगे। सारे आयर्लैण्ड मे स्वयंसेवकों की भरती होने लगी। थोड़े ही दिनों में ३० हजार स्वयंसेवक भरती हो गये। इसमे सन्देह नहीं कि उनके पास हथियार बहुत थोड़े थे, किन्तु उनमें उत्साह था, वे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और उन्हें विश्वास था कि समय पर हथियार भी मिल जायँगे। उस समय लोगो में इतना उत्साह था कि कई बूढ़े भी इस दल मे भरती हो गये।

मैक्स्विनी के लिए भरती का यह आन्दोलन ईश्वर की महान् कृपा थी। भगवान ने उसे स्वभाव से ही सैनिक पैदा किया था। वह जी-जान से इस आन्दोलन मे कूद पड़ा। सप्ताह मे एक बार क़वायद होती थी; किन्तु वह सारे सप्ताह रणनीति का अध्ययन करता था। उसे पूरा भरोसा था कि आयर्लैण्ड का उद्धार ये स्वयंसेवक ही करेंगे, जो समय आने पर नियमित रूप से सेना में भरती किये जाते हैं। मैक्स्विनी को अपनी विजय पर पूरा विश्वास था। उसे कभी यह सन्देह नहीं होता था कि आयर्लैण्ड स्वतंत्रता के युद्ध मे हारेगा। उसने अपना उत्साह, उमङ्ग और

आशा स्वयंसेवकों में भर दी। आयर्लैण्ड में घड़ाघड़ स्वयं-सेवक भरती होने लगे, किन्तु नरमदल वालों ने अपना सारा ज़ोर इस आन्दोलन के विरुद्ध लगाया। किन्तु जिस जाति में स्वतंत्रता के भाव पैदा हो जाते हैं वहाँ कुछ इने-गिने स्वार्थी लोगों को छोड़कर सभी मातृ-भूमि के सैनिक हैं। उन्हें भरती होने से कौन रोक सकता है? नरमदल वाले कुछ न कर सके। अन्त में उन्हें स्वयं भी भरती में भाग लेना पड़ा। कुछ दिनों बाद इंगलैण्ड की जर्मनी से लड़ाई छिड़ गई। मैक्स्विनी आदि प्रजातन्त्रवादियों ने समझा, अब मौक़ा आ गया। इस वक्त यदि इंगलैण्ड दबाया जाय तो उसे भागने में देर न लगेगी। किन्तु रेडमण्ड ने इन स्वयंसेवकों का प्रयोग इङ्गलैण्ड की सहायता करने के लिए करना उचित समझा। बस सब स्वयंसेवक इङ्गलैण्ड की तरफ होने लगे। मैक्स्विनी घबराया और उसने इङ्गलैण्ड के विरुद्ध आन्दो-लन शुरू किया। स्वयंसेवकों में दो दल हो गये। २॥ लाख स्वयंसेवकों में से कुल ८००० प्रजातंत्रवादियों की तरफ रहे। कार्क की स्थिति और भी खराब थी। किन्तु मैक्स्विनी ने बड़ी शान्ति से काम लिया। वह जितने स्वयंसेवक मिले उन्हें लेकर गांव गांव फिरा और नये स्वयंसेवक भरती करने की चेष्टा की। उसका यह उत्साह देखकर अन्य स्थानो के और स्वयंसेवकों ने भी रङ्ग-रूट भरती किये।

१९१४ ई० की १९ वीं सितम्बर से कार्क से 'फायनाफ़ेले' नामक सप्ताहिक पत्र निकला। इसका सारा भार मैक्स्विनी पर था। इसके लेखों से आयरिश जाति में नया उत्साह पैदा हुआ। जो पीछे हट गये थे वे आगे बढ़े। इसके पहले अङ्क में मैक्स्विनी

ने लिखा, "वर्तमान संकट के कारण यह पत्र निकाला जा रहा है। यह समाचारों का नहीं, सिद्धान्तों का प्रचार करेगा। हम आयर्लैण्ड के लिए कम-से-कम यह चाहते हैं कि इस मौक़े पर आयर्लैण्ड वह राज-शक्ति प्राप्त कर ले, जिससे बाहर-भीतर का अपना इन्तज़ाम वह आप ही कर सके।" एक दूसरे अङ्क में उसने लिखा, "हम आयर्लैण्ड मे आग लगा देना चाहते हैं। हमारा विचार है कि हमारा व्यक्तिगत बलिदान इस कार्य के लिए बहुत कम है। ज़रा बलिदान का अर्थ तो समझिए। आयर्लैण्ड में शत्रु का रक्त बहाया जा सकता है, किन्तु पहले उसका खून नहीं बहाया जाना चाहिए क्योकि इससे प्रति-हिंसावृत्ति जागृत हो सकती है। आयरिश भूमि में पहले आयरिश रक्त बहाना चाहिए। फिर आप देखेंगे, स्वाधीनता का उद्धार करने के लिए ऐसा जहाद आरम्भ होगा जिसे शैतान की सारी शक्तियों नहीं हरा सकतीं। हमें मिचल के वे शब्द याद रखने चाहिएँ, जो उसने फांसी पर चढ़ते समय वीर-गर्जन के साथ लार्ड क्लारेण्डन से कहे थे, 'माइ लार्ड! मैं जानता था, मुझे फांसी पर लटकना पड़ेगा; किन्तु मैं यह भी भली-भांति जानता था कि विजय मेरे साथ रहेगी और मेरे साथ है।' हम इस विजय का महत्व नही समझे हैं, किन्तु अब शीघ्र समझ जायँगे। हमें समझना चाहिए, विजय दो प्रकार की होती है और मिचल के जैसी विजय सांसारिक विजय की सीढ़ी है। हमारे स्वयं-सेवक अभी तत्पर नहीं हैं, उन्हें पूरी शिक्षा नहीं मिली, न उनकी परीक्षा ही हुई है। आवश्यकता है कि मिचल के उक्त सिद्धांत का प्रचार हो, जिससे वे कार्य-साधन या मरण के लिए

सदा तैयार रहें। एक शुद्ध बलिदान यह काम कर सकता है। यह उनकी आत्मा में नई रूह फूंकेगा, दैवी ज्योति जलावेगा और आयलैंड का भाग्य उनके हाथों में सुरक्षित रहेगा।" इस पत्रका अन्तिम अङ्क उसी साल की पांचवीं दिसम्बर को निकला। उसके बाद सम्बन्ध-विच्छेदी पत्र आयलैंड में बन्द कर दिये गये। इस पत्र के लिए मैक्स्विनी को अपना प्यारा पुस्तकालय बेंच देना पड़ा। वह शायद ही कभी इन पुस्तकों को बेंचता, किन्तु देश के नामपर उसने यह बलिदान किया। पत्र के कुल ११ अङ्क निकले; पर वह अपना काम कर चुका था।

सन् १९१५ में आयरिश जाति की आंखें खुलीं। उसने देखा कि साम्राज्य के लिए स्वयंसेवक बनना नादानी है। इस बीच मैक्स्विनी ने पूरी चेष्टा की कि उसके दल में स्वयंसेवक भरती हों। अबतक वह फुरसत निकालकर स्वयंसेवक भरती करता था, किन्तु अब उसने नौकरी छोड़ दी और सारा समय इसी काम में लगाना शुरू किया। वह अपनी बाइसिकल पर कार्क के जिले भर में दौरा करता था और जहाँ जाता था वहीं आग भड़का देता था। १९१६ ई० के आरम्भ में ही उसने कार्क जिले को उत्तम रूप से संगठित कर दिया। उसका उन दिनों का परिश्रम देखकर मुँह से यही शब्द निकलते हैं—'यदि स्वाधीनता का उपासक हो तो ऐसा हो।'

४—पहली गिरफ़्तारी।

सरकार फ़ौरन ताड़ गई कि मैक्स्विनी ने आयलैंड में राज-विद्रोह की आग फैलाई है। बस, १३ जनवरी, १९१६ ई० को

मैक्स्विनी अपने घर पर गिरफ्तार कर लिये गये। मकान की तलाशी ली गई कि कहीं हथियार छिपे हुए न हों। माल बरामद नहीं हुआ, किन्तु पुलिस क़ागज़-पत्र उठा ले गई। मैक्स्विनी के ऊपर यह अभियोग लगाया गया कि तुमने दूसरी जनवरी को बालिनो में राजद्रोही भाषण दिया। मैक्स्विनी महीनों हवालात में सड़ते रहे। पार्लमेण्ट मे सवाल पूछा गया। उत्तर मिला, कि मैक्स्विनी का अपराध बहुत बड़ा है; किन्तु धीरे-धीरे रहस्य खुला कि मैक्स्विनी के पास उनके छोटे भाई जान की चिट्ठियाँ थीं जो उस समय बर्लिन में था। इसपर सन्देह हुआ कि आयरिश स्वयंसेवक जर्मनी से मिले हुए हैं और उनके कोष में जर्मनी का रुपया है। ख़ुफ़िया पुलिस के बड़े-बड़े दिग्गजों ने माथा लड़ाया कि इन पत्रों में शब्दों का किन अर्थों में प्रयोग हुआ है। जान मैक्स्विनी गिरफ्तार कर लिया गया। उसके कागज-पत्रों की तलाशी हुई। किन्तु कहीं भी जर्मन-षड्यन्त्र का पता न चला। यह बर्लिन जर्मनी की राजधानी नहीं, किन्तु एक दूसरे स्थान का था। मामला शुरू हुआ। बड़े दावपेंच खेले गये। किन्तु मजिस्ट्रेट राष्ट्रीय दल के थे। उन्होंने हँसी-मज़ाक की तौरपर मैक्स्विनी को एक शिलिंग जुर्माना किया। इस निर्णय से आयरिश स्वयंसेवक भरती करने मे बड़ी सहायता मिली। उधर जनता में इंगलैण्ड की ओर से लड़ने का उत्साह धीमा पड़ गया!

आयरिश प्रजातन्त्र का भ्रातृ-संघ यथाशीघ्र बलवा करने की तैयारी करने लगा। सरकार यह देखकर घबराई कि आयर्लैंड में ब्रिटिश सेना के लिए रङ्गरूट तो भरती हो नहीं रहे हैं, उलटे आयरिश स्वयंसेवकों का दल बढ़ रहा है। २३ अप्रैल सन् १९१६ ई०

का दिन सारे देश में एक साथ गदर करने का नियत किया गया। मैक्स्विनी बगावत के पूरे पक्षपाती थे। जब दिन निकट आने लगा, उनकी नींद और भूख हराम हो गई। वह दिनभर दौड़-धूप मचाते थे और रात को सोचते थे, किस प्रकार सफलता प्राप्त होगी। उनके भाग्य से वह दिन आ गया था जिसके स्वप्न वह बचपन में देखा करते थे। सब तैयारियाँ हो चुकी थीं, स्वयंसेवक आशा लगाये हुए थे, अब शीघ्र ही देश उठ खड़ा होगा। किन्तु २२ अप्रेल के पत्रों में स्टाफ के मुखिया अध्यापक मैक्नील की सूचना छपी "किसी बड़े संकट के कारण वह आज्ञा रद्द की जाती है जो आयरिश स्वयंसेवकों को कल के लिए दी गई थी।" इस आज्ञा से २३ तारीख का बलवा रुक गया। आयरिश प्रजातन्त्र के भ्रातृ-संघ ने आज्ञा निकाली कि २४ तारीख को बलवा किया जाय। इस गड़बड़ी से कहीं बलवा हुआ, कहीं नहीं हुआ। कार्क के लार्ड मेयर वहां के स्वयंसेवकों से सन्धि करने आये और उनसे हथियार सौंप देने को कहा। शर्त्त यह थी कि स्वयंसेवकों को दण्ड न मिलेगा. किन्तु वचन तोड़ा गया। तीसरी मई को मैक्स्विनी गिर-फ्तार किये गये और कार्क की जेल में बन्द कर दिये गये। हफ्ते भर बाद वह डब्लिन भेजे गये और वहां से वेकफिल्ड-जेल में पहुँचाये गये और अन्त में उत्तरी वेल्स की फ्रन्गाक छावनी में नजरबन्द किये गये। सारे देश में सनसनी फैल गई और यही बलवाई चाहते थे। वे खूब जानते थे कि वर्तमान बलहीन स्थिति में बलवा सफल नहीं हो सकता। किन्तु जब कई बड़े-बड़े देश-भक्त स्वतन्त्रता के युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देते हैं, तो उन मुर्दों में भी जान आ जाती है जो जाति-द्रोही और कायर

हैं। फल यही हुआ, देश की चेतनता में बिजली दौड़ गई। आयरिश लोकमत वलचे के पक्ष में हो गया। अगस्त महीने में सरकार ने समझा, इन नेताओं को लोगों की पहुँच से बाहर रखना चाहिए। इसलिए ये लोग रीडिंग जेल में रक्खे गये। दिसम्बर की २४ तारीख को ये सब छोड़ दिये गये। इङ्गलैण्ड के प्रधान मंत्री ने कहा, हम इस कार्य-द्वारा आयर्लैण्ड में ऐसी स्थिति पैदा करना चाहते हैं जिससे वहाँ का लोकमत सन्धि के अनुकूल हो जाय। छूटे हुए नेताओं ने फिर वही काम हाथ मे लिया, जिसे वे छोड़कर गये थे। फल यह हुआ कि २२ वीं फरवरी सन् १९१७ ई० को मैक्स्विनी फिर गिरफ्तार कर लिये गये और इङ्गलैण्ड के ब्रामयार्ड स्थान को भेजे गये। वहाँ वह नजरबन्दी में रक्खे गये। जून के अन्त में यह आज्ञा रद्द की गई और मैक्स्विनी कार्क को लौट आये। उनकी रफ़्तार वही रही जो पहले थी। अक्तूबर में वह फिर गिरफ्तार किये गये। ६ माह की जेल की सजा मिली। उन्होंने जेल के अन्दर भोजन छोड़ दिया और नवम्बर में वह बरी कर दिये गये। १९१८ ई० के मार्च महीने में वह फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उनसे कहा गया अपनी ६ महीने की सजा पूरी करो। चौथी सितम्बर को उनके ६ महीने पूरे हुए और जेल के फाटक पर पहुँचते ही वह गिरफ्तार कर लिये गये और इङ्गलैण्ड की लिङ्कन जेल में भेज दिये गये। इस जेल में डी. वेलेरा आदि नेता भी रक्खे गये थे। अभियोग यह था कि ये लोग जर्मनी से मिलकर षड्यंत्र रच रहे हैं। इन सब बातों से आयर्लैण्ड में प्रजातंत्र की लहर बढ़ती गयी।

५—आयरिश प्रजातंत्र

जिन दिनो सिनफिन में कम आदमी थे उन दिनों उसकी नीति पार्लमेण्ट को अस्वीकार कर के आयरिश प्रतिनिधियों को हटाने की थी। किन्तु अब जब इसका जोर बढ़ गया तो इसने अपने मेंबर खड़े करके आयरिश शासन-सभा बनाने की सोची। इसका अर्थ यह था कि जब देश का बहुमत प्रजातन्त्रवादियों को अपने प्रतिनिधि चुनकर इङ्गलैण्ड का राज्य नहीं चाहता है तो उससे जबरदस्ती मनवाना असम्भव है। इस प्रकार 'डेन इरान' अर्थात् आयरिश शासन सभा की उत्पत्ति हुई! दिसम्बर १९१८ ई० के चुनाव से मालूम हुआ कि १०५ मेम्बरो मे से ७३ मेम्बर प्रजातंत्रवादी चुने गये हैं और अधिकांश वे हैं जो नजरबन्द हैं। इनमें मैक्स्विनी भी चुने गये थे। १९१९ ई० के मई महीने में सब नजरबन्द छोड़ दिये गये। आयरिश शासन-सभा ने अपनी अदालतें, अपनी पंचायतें तथा अपने बोर्ड स्थापन किये। आयरिश स्वयंसेवक प्रजातन्त्र की सेना में परिणत हो गये। अब इङ्गलैण्ड के साथ नियमित रूप से युद्ध आरम्भ हो गया।

कार्क के चुनाव में श्री टामस कर्टिन लार्ड मेयर चुने गये। किन्तु कुछ छद्मवेशी गुँडो ने उन्हे गोली से मार दिया। आयर० लैंण्ड वाले कहते हैं ये गुंडे पुलिस वाले थे। जूरी ने लायड जार्ज को अपराधी बताया। इस स्थान की पूर्ति के लिए मैक्स्विनी चुने गये। मैक्स्विनी पद के भूखे नहीं थे; किन्तु वह समय संकट का था और लोग घबरा रहे थे। पहले लार्ड मेयर श्री टामस कार्टिन की हत्या से यह आशंका हो रही थी कि लार्ड मेयर का पद

या तो खाली रह जायगा या इस पर अङ्गरेज़ सरकार का कोई पक्षपाती रक्खा जायगा। ऐसी स्थिति में मैक्स्विनी ने जनता को ढाढ़स बँधाने के लिए यह पद स्वीकार किया। इस अवसर पर मैक्स्विनी ने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने कहा था—"मैं एक सैनिक के रूप में यह पद स्वीकार कर रहा हूँ। पहला लार्ड मेयर मारा गया है। उसकी खाली जगह भरने के लिए मैं आया हूँ। यह समय साधारण नहीं है। पहले लार्ड मेयर की हत्या से यह मालूम पड़ता है कि हमे भयभीत करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस धमकी का उत्तर देना हमारा पहला कर्त्तव्य है। इसका उचित उत्तर तो यही है कि हम निर्भय रहे, शांतचित रहे और अपने लक्ष्य पर डटे रहे। यही दिखलाने के लिए मैं यह पद स्वीकार कर रहा हूँ। × × × हमारा यह संग्राम प्रतिहिंसावृत्ति को चरितार्थ करने के लिए नही है। यह तो सहिष्णुता का युद्ध है। इसमे उनकी विजय नहीं होगी, जो शत्रु को अधिक यन्त्रणा पहुंचायेंगे, किन्तु उनकी जो अधिक यन्त्रणा सह सकेंगे। साथ-ही-साथ हम अपना वह अधिकार भी नहीं छोड़ेंगे, जिससे दुष्टों और हत्यारों को उनके अपराध का दण्ड दिया जाता है। × × × कभी-कभी अपने वर्तमान दुःख से छटपटाकर हम बिना विचारे मूर्खता-पूर्वक चिल्ला उठते हैं कि हम बहुत बड़ा बलिदान कर रहे हैं। किन्तु इसके लिए जाति के शूरवीर और सबसे श्रेष्ठ रत्नों का बलिदान ही उपयुक्त होता है। इससे छोटा बलिदान देश का उद्धार नही कर सकता। इसी कारण हमारा संग्राम धर्म-संग्राम है। इसे देश के लिए मरे हुए इन वीरो के रक्त ने पवित्र कर दिया है और यह शहीद हमारी विजय पक्की कर गये हैं। जो काम उन्होंने

अधूरा छोड़ा है उसे हम उठा रहे हैं; निभाना भगवान के हाथ है। हम तो अपने हिस्से का बलिदान चढ़ाने आये हैं। हम किसी निरपराध का रक्त बहाने नहीं आये; हम अपना खून बहायेंगे और सोभी अपने देश के उद्धार के लिए। शत्रु से हम साफ-साफ कहेंगे, हमें दया नहीं चाहिए और न हम आपसे कोई समझौता करेंगे। किन्तु दयामय भगवान से हम हाथ जोड़ कर प्रार्थना करेंगे, हे भगवन्! हमें शक्ति दीजिए जिससे हम धैर्य पूर्वक काम कर सकें और अनन्त कष्ट सहते हुए भी देश को विजयी बना सकें।" इससे पाठकों को पता चलेगा कि किस भयानक समय में मैक्स्विनी ने लार्ड मेयर का संकटपूर्ण पद स्वीकार किया था।

मैक्स्विनी ने जी-जान से प्रयत्न किया कि कार्क नगर में सुप्रबन्ध रहे। सुबह दस बजे वह आफिस जाता था और रात के दस बजे वापिस आता था। उसे दिखाना था कि प्रजातन्त्रवादी आयर्लैण्ड में स्वराज्य ही नहीं किन्तु सुराज्य भी रख सकते हैं। इस पद के साथ-साथ मैक्स्विनी उन दिनों कार्क—ब्रिगेड का कमांडिंग अफसर भी था। जहां कहीं प्रजातन्त्रवादियो ने म्युनिसिपैलिटियो तथा अन्य बोर्डों को अपने हाथ में लिया, वहीं ईमानदारी, कमखर्ची और अपने अच्छे इन्तजाम से जनता को वश कर लिया। यह देख कर ब्रिटिश सरकार घबरायी। उसने उनकी अदालतें बन्द कर दीं, म्युनिसिपैलिटी के बड़े-बड़े पदाधिकारियों को गिरफ्तार कर लिया और प्रजातंत्रवादियों को दबाने की प्रबल चेष्टा की। १२ वीं अगस्त को रात के ८ बजे कार्क के नगर-भवन को भी सरकारी सेना ने

घेर लिया। मैक्स्विनी और उसके दस साथी गिरफ्तार कर लिये गये। इन पर न कोई अभियोग लगाया गया, न तलाशी में कोई सन्देह-जनक वस्तु मिली। रात को १२ बजे नगर-भवन पर दूसरा धावा हुआ और मैक्स्विनी की चिट्ठियों का निजू दराज़ खोला गया। जिसमें कुछ क़ागज़ पत्र मिले। इन क़ागज़ों के आधार पर ४ अभियोग लगाये गये। कोर्ट मार्शल में इनका मामला पेश हुआ। इस मामले की रिपोर्ट 'कार्क एग्ज़ामिनर' नामक स्थानिक पत्र के १७ वीं अगस्त के अङ्क में इस प्रकार छपी थी:—

'लार्ड मेयर राइट आनरेबल टेरेन्स मैक्स्विनी ने गिरफ़्तारी के बाद भोजन नहीं किया था। उनमें दुर्बलता के चिन्ह प्रकट हो रहे थे। एक आराम कुर्सी पर वह बिठलाये गये। दोनों तरफ़ बन्दूकधारी दो सिपाही खड़े थे। उनके कई मित्र और साथी वहाँ उपस्थित थे। जो आदमी अदालत में आता था, उसका नाम धाम पूछकर रजिस्टर में लिखा जाता था और उसकी तलाशी ली जाती थी। जब लार्ड मेयर से पूछा गया "क्या तुम्हारा कोई वकील भी है ?" तो उन्होंने उत्तर दिया "मैं तुम्हारी कार्रवाई के बारे में एक बात कहना चाहता हूँ। तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध यह है कि मैं कार्क का लार्ड मेयर हूँ, इस नगर का सबसे बड़ा मजिस्ट्रेट हूँ, अतः मैं घोषणा करता हूँ कि तुम्हारी अदालत गैरक़ानूनी है। आयरिश प्रजातन्त्र के क़ानूनों के अनुसार इसमे भाग लेनेवाले गिरफ्तार किये जा सकते हैं।"

इसके बाद सरकारी वकील का बयान हुआ और कई लोगों की गवाहियाँ हुई। अन्त में मजिस्ट्रेट ने मैक्स्विनी से पूछा

कि "आपको कुछ कहना है ? मैक्स्विनी कुर्सी से उठने लगे; किन्तु मजिस्ट्रेट ने कहा—"नहीं, आप कमज़ोर हैं, बैठे रहिये।" लार्ड मेयर ने उत्तर दिया—"आप की कार्रवाई समाप्त होने तक मैं खड़ा रह सकता हूँ। उसके बाद मैं जीऊं या मरूं एक बात है। मैं कह चुका हूँ कि आपकी कार्रवाई ग़ैरक़ानूनी है। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह अपने बचाव के लिए नहीं। आप लोग समझेंगे और बहुत शीघ्र समझेंगे कि आयरिश प्रजातन्त्र वास्तव में विद्यमान है। मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि जो अपराध किसी राष्ट्र के प्रधान के प्रति किया जाता है, वह सबसे बड़ा है और उसकी अवैधता और भी बढ़ जाती है जब कि ऐसे पुरुष को गिरफ़्तार करने के साथ-साथ उसका मकान और कमरा ज़बर्दस्ती खोला जाता है और वहाँ से उसके कागज़-पत्र उठा लिये जाते हैं। महाशयो! मैं थोड़ी देर के लिए स्थिति उलट कर आपको कटघरे में रखना चाहता हूँ। मेरी तलाशी में एक कागज ऐसा मिला है, जिसमें जूरी ने मेरे भूतपूर्व पदाधिकारी की हत्या के विषय में ब्रिटिश सरकार और उसकी पुलिस को एकमत होकर खून का अपराधी बताया था। अब आप स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि आज इस ग़ैरक़ानूनी अदालत में भी पहले इस बात का फैसला होता; किन्तु वह कागज़ छिपा दिया गया है। ऐसा करना उन खूनियों का अपराध सिद्ध करना है। इससे आप समझ सकते हैं कि मेरी स्थिति संकटपूर्ण है, क्योंकि मैं किसी भी समय मारा जा सकता हूँ। आप शायद पहले कागज़ को छिपाकर किसी दूसरे आदमी पर अभियोग खड़ा करना चाहते हैं; किन्तु मैं कहूँगा कि इन सबका ज़िम्मेवार मैं हूँ। आप लोगों ने एक

मज़े की बात और की है। मैंने एक चिट्ठी पोप को लिखी थी। वह ओलीवर प्लांकेट को दीक्षा देने के समय लिखी गई थी। वह पोप के पास पहुँच चुकी होगी। जब वह यह सुनेंगे कि यह पत्र भी मेरे पास रहने से राजविद्रोही गिना गया है तो क्या ही हँसेंगे।"

इसपर सरकारी वकील ने कहा—"इस पत्र के कारण आप पर कोई अभियोग नहीं लगाया गया है। यह पत्र आपको लौटा दिया जायगा।" यह सुनकर लार्ड मेयर बोले—"अब इतने दिनों बाद इस भूल-सुधार से कोई लाभ नहीं। हाँ, मेरी एक और चिट्ठी पुलिस ले गई है। पैरिस की म्युनिसिपल-कौन्सिल के अध्यक्ष ने यह पत्र मेरे पास भेजा था जिसमें कार्क के बन्दरगाह के विषय में कई बातें पूछी गई थीं। मैंने उनका उत्तर दिया और जवाब की एक नकल अपने पास रख ली। अब फ्रेंच सरकार यह सुनकर खूब हंसेगी कि पैरिस की म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष के लिए यह अपराध है कि वह मुझसे पत्रव्यवहार करे और मेरी जेब मे रहने से यह पत्र राजविद्रोही हो गया है। और लीजिए; कई विदेशीपत्र-संपादकों के विज़िटिंग कार्ड्स् तलाशी में मिले और वे भी राजविद्रोही गिने गये। मुझे इन बातों की कुछ परवा नहीं है। किन्तु यह अनुचित है कि दूसरों को फँसाने के लिए एक स्थान पर मिले हुए कागज़ दूसरे स्थान पर मिले हुए कागज़ बतलाये जायँ। इस विषय में सैनिकों और अफ़सरों ने विश्वासघात किया है। मै साफ-साफ कहूँगा कि मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि मै आयरिश प्रजा-तन्त्र का सैनिक हूँ और प्रत्येक सैनिक का आदर करना चाहता हूँ। मै फिर उन राजविद्रोही शब्दो की याद दिलाता हूँ जो मैंने

अपने निर्वाचन के समय कहे थे। मैंने कहा था "मैं किसी से दया की भिक्षा नहीं माँगता हूँ और न समझौता ही करना चाहता हूँ। मैं यही सिद्धांत मानता हूँ, मैं दया नहीं चाहता।

लार्ड मेयर को कैद की सजा दी गयी। उन्होंने कहा—"मैं यह कह देना चाहता हूँ कि आप मनचाही सजा दीजिए, किन्तु मैं शीघ्र ही इसका अन्त कर दूँगा। मैंने बृहस्पतिवार से कुछ नहीं खाया है। इसलिए मैं महीने भर में ही मुक्त हो जाऊँगा।" इस-पर मजिस्ट्रेट बोला—"क्या क़ैद की सजा मिलने पर आप भोजन करना छोड़ देंगे?" लार्ड मेयर ने उत्तर दिया—"मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैंने अपनी पराधीनता का समय निश्चित कर लिया है। अब आपकी सरकार चाहे जो करे। **जिन्दा रहूँ या मर जाऊँ किन्तु महीने भर के भीतर स्वाधीन हो जाऊँगा।"**

उनको दो साल की सजा हुई। दूसरे रोज़ सुबह तीन और चार बजे के बीच जहाज पर सवार कराकर वह वेल्स के पेम्ब्रोक डक पर पहुँचाये गये और लण्डन भेज दिये गये। १८ अगस्त को सुबह को ४ बजे वह ब्रिक्सटन जेल के गवर्नर को सौंप दिये गये। अब उस यन्त्रणा का आरम्भ हुआ जो संसार में उथल-पुथल मचा गई।

६—महात्मा का अनशन-व्रत

ब्रिक्सटन जेल में जो वीरता मैक्स्विनी ने दिखलाई वह उन्हें ही नहीं सारे आयर्लैंड को अमर कर गई है। मैक्स्विनी ने प्रण

किया था कि महीने भर मे स्वाधीन हो जाऊँगा। पतितों के उद्धारक भगवान् ने कहा—"तुम सदा स्वाधीन हो, किन्तु उन गिरे हुए लोगो को अपने अपूर्व त्याग और सहिष्णुता के उदाहरण से उठा जाओ, जो गुलामी को गले का हार समझ कर उससे चिपटे हुए हैं।" इसलिए महात्मा मैक्स्विनी ने तिल-तिल करके अपना मांस और अपनी हड्डी उन देवताओ को खिला दी, जो बिना इतने बड़े क्रूर बलिदान के पराधीन देश को जगाने को तैयार नही रहते।

इस सम्बन्ध में लार्ड मेयर के पादरी फ़ादर डोमिनिकने अपनी आँखों देखी जो बातें लिखी हैं, हम यहाँ उनमें से कुछ देंगे। पाठक ध्यान से पढ़े और मनन करे कि देश का कार्य्य उन लोगो से नहीं होता, जो जेल मे जाकर चोरी से भी पूरी-कचौरी खाते हैं, मालपुए उड़ाते हैं और इतना साहस नही करते कि कम से-कम सिग्रेट, तमाखू आदि दुर्गुण तो छोड़ दें, जिनका व्यवहार करने से 'नौकरशाही के साधारण-से साधारण कर्मचारी—जेल-दारोगा आदि के सामने उनकी त्यागी महान आत्मा झुक जाती है। सुनिए, फादर डोमिनिक क्या कहते हैं—"मैं बीसवीं तारीख को लेडी मेयर के साथ लण्डन के लिए रवाना हुआ। दूसरे दिन सुबह वहाँ पहुँचा। लार्ड मेयर को देखते ही मालूम हुआ कि उनकी हालत बहुत खराब है। चेहरा पीला पड़ गया था, मुँह सूख गया था और कमज़ोरी अपना राज्य जमा चुकी थी। किन्तु बुद्धि बिलकुल स्पष्ट थी और वह दृढ़प्रतिज्ञ थे कि भले ही उनकी जान चली जाय, किंतु वह जेल के बाहर निकल कर रहेंगे। वह अस्पताल के उस कमरे मे थे जहाँ आयर्लैण्ड का सिंह रोजर केस-मेण्ट बन्दी था। कई अंग्रेज़ी पत्रो ने छापा था कि लार्ड मेयर

ने भोजन शुरू कर दिया है या वह। उठने के योग्य हो गये हैं, आदि। यह सब बातें सरासर झूठ थीं। लार्ड मेयर ने गिरफ्तारी के बाद भोजन किया ही नहीं। लार्ड मेयर मैक्स्विनी ब्रिक्सटन जेल में सदा शान्त होकर पलङ्ग पर लेटे रहते थे। कारण यह था कि वह अपनी जीवनी-शक्ति को सुरक्षित रखना चाहते थे। देश के लिए मरने को तैयार रहते हुए वह यह देखने के बड़े इच्छुक थे कि आयरिश झण्डे को संसार की जातियाँ सलामी दें।"

"कलम दम नहीं रखती कि उनकी दारुण यन्त्रणाओं का वर्णन करे। सोचिए और अनुभव करने की चेष्टा कीजिए कि तुम्हारे कन्धे में, पीठ में, घुटनों में तथा बदन के प्रत्येक जोड़ में कितना दर्द होगा यदि एक दिन भी लेटे रहना पड़े। ऐसी स्थिति में घुटनों को हिलाने-डुलाने से कितना आराम मालूम पड़ता है, किन्तु इस वीर सैनिक को यह आराम भी न मिला। उसके घुटनों का मांस सूख गया था और उसमें इतनी ताकत भी न थी कि वह अपने बदन के कपड़ों का भार ही उठा सके। एक दिन नहीं सत्तर दिन तक लगातार इस वीर ने यह यातना सही। इस कष्ट और यन्त्रणा के साथ-साथ अनशन व्रत की तकलीफ थी। मुझसे कहा गया था कि कुछ दिन भूखे रहने के बाद फिर खाने की इच्छा ही नहीं रहती। मैंने लार्ड मेयर से इस विषय में प्रश्न किया। उन्हें बेहोश होने के दिन तक भोजन करने की इच्छा थी। एक बार तो उन्होंने कहा कि मैं एक प्याला चाय के लिए इस भूख की हालत में एक हजार पौण्ड भी दे देता! ज्यों-ज्यों भोजन न मिलने से खून कम होता गया उनको स्नायु-सम्बन्धी दुर्बलता ने घेर लिया।

उनको हृद्रोग हो गया, सिर में सूई चुभने के समान दर्द होने लगा, आँखें अन्धी होने लगीं और कान बहरे होने लगे। उस समय की मानसिक व्यथा का विचार कीजिए, जब वह अपनी पत्नी, बहन और भाइयो को देखते थे। इनके उपस्थित रहने से उन्हें आराम भी था, किन्तु इनसे अलग होने का दुःख और यह विचार कि मेरा दुःख देखकर इन लोगों के हृदय में क्या भाव उठते होंगे उन्हे घोर कष्ट दे रहा था। इसपर भी वह न कभी गिड़गिड़ाये और न नाम मात्र को डगमगाये। उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने उन्हे वह मौत दी जो संसार में बहुत कम लोगो के भाग्य में होती है। डॉक्टरो और दाइयों ने अच्छी सेवा की, किन्तु अनशन-व्रत के कारण वे लोग भी उनसे नाराज़ थे। वे इसे बेवकूफ़ी समझते थे। लार्ड मेयर को समझाने-बुझाने की चेष्टा करके, उनके परिवार की याद दिलाकर और यह कहकर कि यदि आप जीते रहते तो आयर्लैण्ड के लिए कितना काम कर सकते थे, उन्होने लार्ड मेयर को बड़ा दुःख दिया। अपनी यन्त्रणा भूलकर लार्डमेयर को उन साथियों की याद आती थी जो कार्क की जेल मे क़ैद थे। वह नितप्रति उनका समाचार पूछते थे और उनके लिए प्रार्थना करते थे। उन वीरों के विषय मे वह कहते थे कि जबतक हमारे पास ऐसे नवयुवक और ऐसे पुरुष हैं, आयरिश प्रजातन्त्र को कोई भय नहीं। उनकी तुलना अंग्रेज़ो से कीजिए, शिक्षित अंग्रेज़ों से कीजिए, इन डॉक्टरों से कीजिए जो हमारे पास हैं, तो आपको मालूम हो जायगा कि वे कितने श्रेष्ठ हैं। वह नितप्रति ईश्वर की बन्दना करते थे और कहते थे कि मुझे इससे शक्ति मिल रही है। धन्य है, टेरेन्स मैक्स्विनी!

धन्य है, आयरिश प्रजातन्त्र की सेना के कार्क ब्रिगेड का कमांडिंग अफसर !! धन्य है, कार्क का लार्ड मेयर !!!

अनशन-व्रत के चौहत्तरवे दिन लार्ड मेयर मैक्स्विनी परलोक सिधारे। उनके मित्र ओ हेगार्टी कहते हैं कि यदि डॉक्टर उन्हें बेहोशी की हालत में कुछ दिन पहले भोजन न कराते तो वह कुछ दिन और जीवित रहते। इस वीर ने अपना वचन रक्खा और जेल का दरवाजा तोड़ डाला। लण्डन के 'टाइम्स' ने ठीक ही कहा था "इस वीर ने मौत का वरण करके अपना साहस और दृढ़ निश्चय संसार को दिखला दिया।" ब्रिटिश सरकार ने उनके मरने के कुछ दिन पहले 'उनकी दो बहनों को बलात्कार जेल से बाहर कर दिया। जब वह मर गये तो उनकी लाश उनकी स्त्री को देने में आनाकानी की। जब लाश मिली भी तो रास्ते में रोक ली गई। कार्क में जब यह लाश पहुँची तो अजीब हालत थी। नगर-भवन में, जहाँ यह रक्खी गई थी, दर्शकों का मेला लग गया। ३१ वीं अक्तूबर सन् १९२० ई० को अपने ४१ वें वर्ष में मैक्स्विनी समाधिस्थ हुए। उनकी कब्र पर आयर्लैण्ड के राष्ट्रपति ने कहा था "जोन आव् आर्क स्वर्ग में अपने इस सहयोद्धा का स्वागत कर रही होगी।" इनसे अधिक उपयुक्त शब्द और कहां मिलेंगे ?

स्वाधीनता के सिद्धान्त
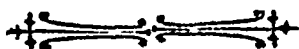
प्रथम परिच्छेद
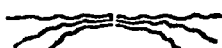
स्वाधीनता का मूल

(१)

हमें स्वधीनता के लिए संग्राम क्यों करना चाहिए ? क्योंकि स्वाधीनता के इस संग्राम का वास्तविक अर्थ और इसकी ओर प्रवृत्त करने वाली असली शक्ति को बहुत कम लोग समझते हैं और इस कम समझने का विचित्र फल देखने में आ रहा है। एक ही पक्ष के लोग अपने आदर्श और कार्यक्रम के विषय में महान् व गम्भीर भेदों के कारण बिछुड़ गये हैं।

(२)

मैं अपनी मातृभूमि में देख रहा हूँ कि कार्य के परिणाम से उसके साधनों को भला या बुरा बताने का सिद्धान्त सर्वत्र काम में लाया जा रहा है। निन्दनीय कूटनीति को काम में लाने के लिए एक पक्ष दूसरे को दोष देता है, किन्तु ऐसे उपायों को काम में लाने से यदि उसे गर्हित विजय प्राप्त हो तो उसे कुछ भी संकोच

नहीं होता। इसलिए आवश्यक है कि साफ बात कही जाय। **वह युद्ध जिसमें शुद्ध साधनों से काम नहीं लिया जाता विजय को पराजय से भी अधिक कलंकित कर देता है।** मैं यह बात स्पष्टरूप से कह रहा हूँ, क्योंकि हम ब्रिटिश राज्य से अलग होने के पक्ष में है और मैं यह दलील भी सुन रहा हूँ, यदि हो सके तो अंग्रेजों की शक्ति को चकनाचूर कर देने के लिए हमें किसी विदेशी राष्ट्र से सन्धि कर लेनी चाहिए। भले ही वह राष्ट्र किसी दूसरे देश की स्वाधीनता को नष्ट-भ्रष्ट करने में लगा हुआ हो। यदि देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी जाति की स्वाधीनता का हरण करके स्वतंत्र बने, तो उसके सिर पर वही श्राप पड़ेंगे जो युगों से वह स्वयं अत्याचार के ऊपर बरसाता आ रहा है।

मै समझने लगा हूँ कि हमारे लिए यह सम्भव है कि नीच उपायों से स्वाधीनता पा लें। इसलिए यह और भी आवश्यक है कि हम अपनी नीति की घोषणा करें और समझें कि हम कहाँ खड़े हैं। **मैं तो इस सिद्धांत को पकड़कर खड़ा हूँ कि आत्मिक पराजय का मूल्य बड़ी-से-बड़ी सांसारिक विजय भी नहीं चुका सकती।** जो पक्ष इसके विरुद्ध है वह पक्ष मेरा नहीं हो सकता।

(३)

हमारी स्वाधीनता का दावा किस बुनियाद पर है? बालकों के स्वाभाविक उत्साह और वृद्धों के अनुभव पर। प्रथम जब लड़के स्कूलों से ताजे बाहर निकलते हैं, उनकी आयु बीस के

नीचे ही होती है, वे प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक वस्तु के विरुद्ध आक्रमण करने को तैयार रहते हैं, तीखी बातें कहने में आनन्द लेते और स्वाधीनता के विषय में छाती खोलकर खूब बातें करते हैं; किन्तु इतने ही में संतुष्ट हो जाते है कि हम बड़ी निर्भीकता पूर्वक बातें छाँट रहे हैं। इसके बाद बचपन चला जाता है, स्थिति की भली-भांति परीक्षा करने के लिए हम मैदान में आते हैं और संसार में अपना निश्चित कार्य ग्रहण करते हैं। कई वर्ष तक संसार का अनुभव प्राप्त करते हैं, जीवन के कठोर संग्राम में पड़ते हैं और घोर संकटों के बाद हममें स्थिरता आ जाती है। हमारा हृदय गहरी बातों मे पैठने के लिये उत्सुक होता है। तब इतना ही यथेष्ट नहीं समझा जाता कि हम पराक्रम को बातें करें। हमारी बातों से सत्य की ध्वनि निकलनी चाहिए। ये दो कारण न होते तो शायद ही कोई मनुष्य प्यारी मातृभूमि पर बलि जाने के लिए तत्पर होता।

(४)

हमारी प्रबल इच्छा है कि हमारी आत्मा उन्नत हो। इसीलिए हम स्वाधीनता का दावा करते हैं। सांसारिक उन्नति हमारे लिए प्रधान विषय नहीं है। जीवन संग्राम के लिए परमात्मा ने मनुष्य को कुछ आत्मिक और शारीरिक शक्तियाँ दे रक्खी हैं। यह बात मनुष्य तथा समाज के लिए बहुत आवश्यक है कि इन शक्तियों का विकास करने और योग्यता-पूर्वक अपना कर्तव्य निबाहने के लिए इनसे पूरा काम लिया जाय। स्वाधीन राष्ट्र में प्रत्येक मनुष्य और समाज को पूरी उन्नति करने के लिए सहज संधि मिल जाती है। पराधीन राष्ट्र में ठीक उसका उलटा होता

है। जब एक देश दूसरे देश को अपने अधीन रखता है तो दास देश का साम्पत्तिक और नैतिक नाश होता है और लूट खसोट का शिकार बनने के कारण उसकी सम्पत्ति घटती है। विजयी जाति अपनी प्रभुता जमाने के लिए जिन दूषित आचरणों का व्यवहार करती है, उनसे विजित जाति का नैतिक पतन होता है। इस नैतिक नाश से राष्ट्र को बचाने के लिए गुलामी से लड़ना पड़ता है। **दास देश में दोष फूलते और फलते हैं। जो आदमी यह बात भली-भाँति हृदयङ्गम कर लेता है, उसके लिए इसके विरुद्ध लड़ने के सिवा और चारा ही नहीं रहता। दास के साथ हम सन्धि नहीं कर सकते।** राज्य में शासनकर्त्ताओं का कर्त्तव्य होता है कि वे प्रजा के उत्तम-से-उत्तम गुणों का उत्कर्ष करें। विदेशी शासन घृणित से घृणित दोषों को बढ़ाने में सहायता करता है। हमारे इतिहास मे इसके कई उदाहरण मिलते हैं। जब राजघराने के लोग यहाँ आते हैं; तब अपने शासन की जड़ मजबूत करने वालों पर रियायतों और उपाधियों की बौछार करते हैं। कृपा उनपर की जाती है जो राष्ट्रीय हित का घात करते हैं। ज़रा सोचिए तो सही ! जिन मनुष्यों का सम्मान किया जाना चाहिए था, वे ऐसे लोगों की तुलना में न कुछ समझे जाते हैं, जो निन्दा के पात्र हैं। दुराचारी राजनीतिज्ञ के भीतर भी कुछ सद्गुण छिपे रहते हैं। स्वतंत्र राष्ट्र इन्हें जगाकर इनका उत्कर्ष करता है, पर विदेशी सरकार नीच वृत्तियों को काम में लाने के लिए उन्हें उपाधियाँ देती है। ऐसे प्रलोभन से अवश्य ही दुर्नीति बढ़ती है।

मनुष्य देवता नहीं है और उत्तम-से-उत्तम परिस्थिति में भी उचित कार्य करना उसे कठिन मालूम पड़ता है। जब बुरा काम करने के लिए चारों तरफ से प्रलोभन मिलता है तो उसमें अपने आप नीच भाव प्रकट होने लगते है। देश के सौभाग्य से हममें से अधिकांश इस बुरे प्रभाव के वश नहीं होते। किन्तु हमारा विश्वास अपने ऊँचे आदर्श से हट जाता है। हम आदर्श की अवहेलना करने लगते हैं। हमारे भीतर सद्वृत्तियाँ रहती हैं; किन्तु हम उन्हे विकसित नहीं होने देते। प्रत्येक मनुष्य के हृदय को महान् और सुन्दर आदर्श के लिए उत्सुक रहना चाहिए; किन्तु जो भूमि चारों ओर से जकड़ी हुई है और बर्बाद हो गयी है, वहाँ इस बात की आशा करना निराशा के गड्हे में गिरना है। **स्वतंत्रता के दावे का गूढ़ अर्थ यह है कि बल प्रयोग से भी हमारी आत्मा का हनन कोई नहीं कर सकता।**

(५)

यदि हमारा उद्देश्य बदला लेना होता, तो सब से अच्छी नीति यह होती, कि हम जैसे हैं, वैसे ही बने रहें। मौजूदा हालत में हमारा देश इङ्गलैण्ड के लिए भय का घर है। यह बात सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इङ्गलैण्ड अपने मूर्खतापूर्ण व्यवहार से हमें शान्त करने की बार-बार चेष्टा कर के स्वयं इस बात को स्वीकार कर रहा है। यदि इङ्गलैंड चैन से रह सकता तो वह हमारी पर्वा क्यों करता? **यदि हम इङ्गलैण्ड से अलग हो जाने के उद्योग में सफल हो जायँगे**

तो हमारे बाद सब से अधिक लाभ इङ्गलैण्ड का ही होगा। यह बात अद्भुत-सी जान पड़ती है किन्तु यही सच भी है। इस सत्यता का मूल्य घट नहीं जाता, चूँकि अंग्रेज़ लोग इस समय शायद ही इसे समझ सकते अथवा इसकी क़द्र कर सकते हैं। हमारे मुल्क की सैनिक शक्ति इस समय हास्यास्पद है। स्वाधीन आयर्लैंड इसे ठीक करेगा— शत्रु के आक्रमणों के विरुद्ध अपना सैन्य दल बढ़ाएगा। इससे इङ्गलैंड आयर्लैण्ड की ओर से होने वाले शत्रु के आक्रमण से बच जायगा। मेरी समझ मे इतना बड़ा मूर्ख कोई न होगा जो यह विचार करे कि स्वतन्त्र आयर्लैण्ड बिना किसी मतलब के दूसरों के झगड़ों में दस्तन्दाज़ी करेगा। हमें निष्पक्ष रहना चाहिए। हमारी सहज बुद्धि हमें निष्पक्ष बचाये रक्खेगी और हमारा सत्य-प्रेम भी हमें झगडे से अलग रक्खेगा।

स्वाधीन राष्ट्र के ऊपर यह ज़िम्मेदारी होती है कि वह दूसरे राष्ट्र की स्वाधीनता का शत्रु न बने। **सर्व जातीय स्वाधीनता सार्वभौमिक सुरक्षा का पथ साफ करती है।** यद्यपि यह सत्य है कि जब तक संसार में ज़ालिम सरकारें हैं, एक राष्ट्र, चाहे वह कितना ही भला क्यो न हो, संसार की दशा नहीं सुधार सकता। तो भी उसका कर्तव्य है कि अपना राजकाज इस ढंग से चलावे कि वह सार्वभौमिक स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व के अनुकूल हो। आश्चर्य-जनक होने पर भी यह बात ठीक है कि इङ्गलैण्ड से सम्बन्ध टूट जाने पर ही हमारी उससे स्थायी मित्रता हो सकती है, क्योंकि आयर्लैण्ड का कोई भी निवासी इतना मूर्ख

नहीं है जो चिरकाल के लिए इङ्गलैण्ड से लड़ता रहना चाहे। यह एक अशक्य विचार है। **हमारी स्वाधीनता-संग्राम के पवित्र हेतु का प्रमाण यह है कि हमारी स्वतन्त्रता शत्रु को हानि पहुँचाने के बदले उसका उपकार करने के लिए होगी।** यदि हम शत्रु को क्षति पहुँचाना चाहते हैं, तो हमें आज ही की हालत में अर्थात् उसके लिए भय का कारण बनकर रहना चाहिए। ऐसे अवसर आते रहेंगे, किन्तु उनसे हम शायद ही सुखी हो सकें। यथार्थ में विचार किया जाय तो **कुछ देशों को स्वतन्त्र कर देने से ही स्वाधीनता का कार्य पूरा नहीं होता। स्वाधीनता के द्वारा नाना जातियों में सामंजस्य और संसार में सच्चा बन्धुत्व स्थापित होना चाहिए।**

(६)

ऊपर मैंने बहुत सोच विचार कर लिखा है जिससे कोई फलितार्थ को समझने में भूल न करे। वह स्पष्ट और ठीक है, और उसका परिणाम सुंदर होगा।

हमारी अंतरात्मा हमें बतला रही है कि हम व्यक्ति तथा राष्ट्र का उद्धार न कर सकने से विना हवा के घुट-घुट कर मर रहे हैं। यदि हम आगे नहीं बढ़े, तो अवश्य ही हमें गिरना होगा। स्वतन्त्रता का प्रश्न हमारे लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। इसी में हमारी आत्मा का मोक्ष है। यदि सारी जाति स्वतन्त्र होने के लिए कटिबद्ध है, तो सुख हमारे सामने है। हमारी महान् विजय होगी। यदि कुछ ही लोग सत्य-प्रतिज्ञ पाये जाते हैं तो उन्हें

संख्या में कम होने के कारण ही दृढ़ संकल्प होना चाहिए। वे मनुष्यत्व के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए लड़ रहे हैं। बहुमत वालों को न तो इस स्वत्व को मिटाने का कोई अधिकार है, न इसे नष्ट करने को उनमे ताकत ही है। अत्याचारी लोग सत्य के इन सैनिकों को तंग कर सकते हैं, देश-निकाला दे सकते हैं, फांसी पर लटका सकते हैं, पर स्वतंत्रता का नाश नहीं कर सकते। आवश्यकता नहीं है कि पल्टनें स्वाधीनता की रक्षा करें और महात्मा इनकी घोषणा करें। हाँ, कवियों ने सदा इसकी महिमा गाई है और असंख्य जनता अन्त में इसे स्वीकार करेगी। केवल एक व्यक्ति स्वतंत्रता की रक्षा करके सिद्ध कर सकता है कि मनुष्य से इसे कोई जुदा नहीं कर सकता। और चूंकि ऐसे अकेले आदमी की हार कभी नहीं होती, इसलिए स्वाधीनता तथा सत्य सर्वत्र अमर रहे हैं।

"आयर्लैंड की ऐसी दशा कभी नहीं हुई कि सारे देश में केवल एक ही आदमी स्वतन्त्रता का भक्त रहा हो। उसकी ऐसी दशा कभी हो भी नहीं सकती। हम सदियो से इसलिए जीवित नहीं हैं कि हम पर किसी दूसरे का आधिपत्य हो। प्रस्तुत संग्राम का वास्तविक अर्थ, इसकी आध्यात्मिकता तथा यह ज्ञान कि उचित साधनों से स्वतंत्रता प्राप्त करना मनुष्य जाति में भ्रातृभाव फैलाने के लिए उद्योग करना है, प्रत्येक देशवासी का यह कर्तव्य बना देता है कि वह अधिकांश लोगों की उपेक्षा करके

सत्य का अवलंबन करे। जिस पर बहुमत के विरोध करने का कठिन अवसर आता है, उसे बहुत बड़ा भार वहन करना पड़ता है, किन्तु वह यह जानते हुए डटा रहता है कि उसकी विजय अधिकांश लोगों को उस प्रिय आदर्श की ओर ले जायगी जिसका उन्हें पता भी न था। वह अपने आदर्श के लिए गुप्त रूप से तिरस्कृत होकर, प्रकट में भ्रमपूर्ण सिद्धान्त फैलाने का दोषी समझा जाकर, आपत्काल में अटल रहकर और कभी न हारकर, कभी हताश न होकर तथा अपने थोड़े से सहयोद्धाओं को आने वाले शुभ दिन के लिए उत्साहित करते हुए अच्छी अवस्था में अभीष्ट को सिद्ध करते हुए लड़ता रहेगा। यदि ये थोड़े से स्वतन्त्रता के सैनिक खेत रह जायँ तो प्राण देते समय अपने आदर्श की उच्चता को संसार के सामने उज्ज्वल रूप से रख जाते हैं। उनके बलिदान से देश उनके आदर्श के प्रति चौकन्ना हो जाता है और जिसने देश को जगाया तथा आदर्श की रक्षा की उसकी सत्यता सिद्ध हो जाती है। सत्यता सिद्ध होती है उसी सारी जाति की आवाज के विरुद्ध, जिसके विरुद्ध वह एक समय अकेला खड़ा हुआ था। जिस समय वह मैदान में अपने प्राण की आहुति देता है उसी समय वह सारी जाति का त्राण-कर्त्ता बन जाता है।

द्वितीय परिच्छेद
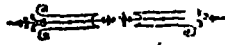
सम्बंध-विच्छेद

(१)

जब हम ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होने के लिए यह दलील पेश करते हैं कि सम्बन्ध टूटने पर ही हमारा देश पूरी उन्नति कर सकेगा और इसी के द्वारा इंगलैंड के साथ हमारी पक्की संधि हो सकेगी, तो हमारे शत्रुओं में नाना प्रकार के भाव देखने में आते हैं। कुछ लोग इस पर सरसरी तौर पर और जोश में आकर विचार करते हैं और अपने दल का ध्यान रखते हुए समझते हैं कि यह नरम अथवा निष्पक्ष दल पर आक्षेप किया गया है। दूसरे लोग इस पर मोटा विचार करते हैं, किन्तु अपने दिल में सोचते हैं कि हम वैज्ञानिक रूप से इसकी आलोचना कर रहे हैं और मुस्कुराकर इस प्रश्न को बेहूदा समझ अपने दिल से बाहर कर देते हैं। अपने ही देश के नरम तथा निष्पक्ष दल से वर्तमान समय में इस विषय पर लड़ना ठीक नही है। किन्तु इन लोगो के कारण हम लोगो का दिल नहीं टूटना चाहिए, क्योंकि यह लोग भी जनता के साथ खिंचे हुए चले आवेंगे। वह शुभ दिन आवेगा जब एक महत्कार्य या एक वीरोचित बलिदान से देश की चेतनता में बिजली-सी दौड़ जायगी और जनता अपनी कुंभकर्णी

और दुराग्रह से एकाएक सम्बन्ध तोड़ देगी और सत्य, वीर तथा साधु रूप से स्वतन्त्रता की जय मनाते हुए आगे बढ़ेगी। हमें उस शुभ-मुहूर्त के लिए काम करना और तैयार रहना चाहिए।

(२)

ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर हो जाने के प्रश्न पर बारीक आलोचना करनेवाले सज्जन के भावों के लिए कुछ अंश में हम भी दोषी हैं, क्योंकि हमने कभी यह समझाने की चेष्टा नहीं की कि सम्बन्ध विच्छेद की नीति उत्तम और बुद्धिमानी की है। हमने अब तक विच्छेद की नीति को अपना अधिकार समझकर छाती से लगा रक्खा है। इसके लिए लड़ाई की है, आत्म-त्याग किया है और प्रतिज्ञा की है कि प्राण जाने पर भी इसे प्राप्त करेंगे, किन्तु हमने जीवन-विज्ञान में इसका निर्दिष्ट स्थान नहीं समझा है। चाहे दार्शनिक विचारक ने इस पर अधिक विचार न किया हो, तो भी उसने एक त्रुटि सुझाई है। हमें इस प्रश्न पर तात्विक रूप से भी अवश्य विचार करना चाहिए—प्रश्न के भीतर घुसकर नकि सरसरी तौर पर। दर्शन और विज्ञान इस सत्य की घोषणा करते हैं कि सारा संसार अखण्ड और अविरोधी है, और ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ ऐसे नियम आविष्कृत हो सकते हैं, जिन से विश्व की व्यवस्था और एकता का और भी निरूपण हो जायगा। इसलिए यदि हम विच्छेदवादियों का पक्ष उचित सिद्ध करना चाहते हैं तो हमें दिखलाना चाहिए कि यह विच्छेद हमारे राष्ट्रीय जीवन में सामञ्जस्य, एकता तथा उन्नति का प्रचार करेगा। यह संसार के अन्य राष्ट्रों में हमें उचित स्थान दिलायगा और हमें अपने उस राष्ट्रीय उद्योग को पूरा करने में सहायता

देगा, जिसे हम स्वाधीनता के संग्राम में सदा यह सोचते हुए सामने रखते आये हैं कि वह महान् आदर्श हमारे उद्योग की प्रतीक्षा कर रहा है।

(३)

वह श्रेष्ठ संकल्प जो हमारे जीवन का सर्वस्व है, जो हमारे सामने कठोर कर्त्तव्य निर्धारित करता है, जिसका अर्थ आत्म-बलिदान, परम प्रयास, वर्षों तक धैर्य और संभवतः उद्देश्य-सिद्धि से पहले ही मृत्यु का आलिंगन करना है, इतना शक्ति-शाली होना चाहिए कि इसकी सत्यता उन सिद्धान्तो को स्पष्ट करने से प्रमाणित हो जाय जो उसके मूल मे है तथा उसका औचित्य दिखाते हैं, अन्यथा हम उसके लिए आत्म-समर्पण नहीं कर सकते। अब हम स्पष्ट कर के बतलायँगे जिससे मालूम हो कि यह नीति देशवासियो में नई जान डालने वाली तथा उन्हे उत्तेजना देने वाली है। किन्तु इस पर विचार करने के पहले हमें कई ऐसे दुराग्रहो को छोडने के लिए तैयार रहना पडेगा, जिन्होंने चिरकाल से हमारे दिल पर अधिकार जमा रक्खा है। यदि हम ऐसा करना नहीं चाहते तो सत्य को जलांजली देनी होगी।

इस कार्य में आगे बढ़ते हुए हमारा उत्साह भी बढ़ता जायगा और जब हम यह बात सदा ध्यान मे रक्खेंगे कि स्वतंत्रता का ध्येय सब जातियो के लिए सुख तथा मोक्ष प्राप्त करना है और देश को, न कि स्वार्थ मे डूबे हुए उसके किसी छोटे टुकड़े को मनुष्य के लिए अधिक मनोरम निवासस्थान बनाना है तो हम अन्त मे अवश्य विजयी होंगे।

इस विचार से यह विषय सब विचारशील पुरुषों के लिए महत्त्वपूर्ण तथा चित्ताकर्षक बन जाता है। हमारा जो आलोचक मुस्कुराकर इसे टाल देता, वह अब उत्सुकता से इस पर विचार करेगा। फिर भी उसका विश्वास इस पर नहीं जम सकेगा। वह उजाड़ की हुई जन्मभूमि की ओर अंगुली उठाकर शत्रु के बल के साथ इसकी दुर्बलता की तुलना कर के यह प्रतिपादित कर सकता है कि तुम्हारे विचार अच्छे हैं, किन्तु वे स्वप्न मात्र हैं। इसके मानी हैं कि उसके दिल में हमारी बात कुछ-न-कुछ जमी है। यह भी एक लाभ है।

(४)

हमारा वैज्ञानिक समालोचक देश की उजड़ी हालत दिखा-कर एक साधारण भूल करता है। वह बिना हेतु मान लेता है कि देश-भक्त मातृभूमि के भले के लिए जो काम करता है, उसका फल उसे अपने जीवनकाल में ही मिल जाना चाहिए। यह निस्सन्देह झूठ बात है, क्योंकि मनुष्य-जीवन वर्षों से गिना जाता है और जाति का जीवन सदियों से। और चूँकि राष्ट्र का कार्य, भविष्य में उसे पूर्णावस्था को पहुँचाने के लिए हाथ में लिया जाता है, देश-भक्त को ऐसे ध्येय के लिए परिश्रम करने को तैयार रहना चाहिए, जिसकी प्राप्ति दूसरी पीढ़ी में हो।

देखिए, व्यक्ति अपने जीवन का कार्यक्रम किस प्रकार निर्धारित करता है। बचपन तथा किशोर अवस्था में वह तैयारी करता है जिससे उसका यौवन और प्रौढ़ावस्था जीवन का

सर्व श्रेष्ठ युग हो सके। शरीर हृष्ट-पुष्ट हो, मन सबल हो जिससे बुद्धि निर्मल बने; उद्देश्य महान् रहे और आकांक्षा हृदय मे वास करे तथा इन गुणो की सिद्धि एक निश्चित महान् कार्य की सफलता द्वारा प्राप्त की जा सके। उसी मनुष्य की प्रौढ़ावस्था उत्तम होती है, जिसने जीवन का पहिला भाग भली प्रकार बिताया हो और शक्ति संचय की हो। प्रारम्भिक अवस्था मे खेत तैयार किया जाता है और बीज बोया जाता है जो कि विभव के समय पूर्णावस्था मे पहुँचता है। यही बात जाति के लिये भी लागू है। हमें पूर्ण उन्नति के लिए खेत तैयार करना और बीज बोना चाहिए। हमे यह बात ध्यान मे रख कर देश के कार्य मे उद्यत होना चाहिए कि जाति की अभिलाषा एक पीढ़ी में नहीं बल्कि कई पीढ़ियो में पूरी होगी। इसका आनन्द आने वाली पीढ़ियाँ भोगेगी। इसका अर्थ यह नही है कि ध्येय को अपनी दृष्टि से परे समझ कर निरुत्साह तथा निरानन्द से काम करें। हम अपने ही जीवन में इस आशास्थल पर पहुँच सकते हैं, यद्यपि हम इस के सब महान चमत्कारो का इस क्षुद्र जीवन में पता नही लगा सकते। आनन्द के दिन कई युगों में आयँगे। कई लोग हमारी उस महान विजय का उत्सव मनानें के लिए जो हमारी पूर्ण स्वतन्त्रता को स्थापित करेगी, जीवित नहीं रहेगे, तौभी वे बिना पुरस्कार पाये न रहेगे, क्योकि उन्हें भावी विजय की मूर्ति के दर्शन प्राप्त होगे। जब जान बूझकर ऐसे भविष्य के लिए परिश्रम किया जाता है, तब आत्मा ऊंची उठती है। जब हम समझते हैं कि हमारे उद्देश्य को जनता ने भली भांति समझकर ग्रहण कर लिया है, तो अत्याचार इस उद्देश्य का नाश

नहीं कर सकता। हमारे देश का भाग्य निश्चित हो चुका और उसकी स्वाधीनता अटल रहेगी यह जानकर क्या आत्मा कम आनन्दित होती है? ऐसे एक नेता के विरुद्ध मनमाने आक्षेप करते जाइए, किन्तु उसका हृदय आनन्द में मग्न रहता है, उसका विश्वास उसे अदम्य उत्साह देता है और अन्त में सिद्ध हो जाता है कि वही बुद्धिमान था। उसके विचार भूतकाल के विषय में स्पष्ट होते हैं। अपने समय के छिपे हुए सत्य का वह पता चला लेता है और जीवन के श्रेष्ठ अनुभव से इस सत्य की तुलना करके काम में जुट जाता है। इससे उसकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है, क्योंकि अन्त में उसका कार्य्य प्रकट होता है, परिपक्व होता है और सौगुना फलता है। वह थोड़े समय में फल भले ही न दे, किंतु जब वह अपने प्राणों की आहुति देता है, तुरंत उसकी महिमा फैल जाती है। उसका जीवन आदर्श रहता है, क्योंकि उसके प्राण धर्मयुद्ध में गये हैं। **वह थोड़े से समय का बलिदान करके अनंत काल की सेवा कर चुका है; वह महात्माओं की सङ्गति करने स्वर्ग चला गया है और उनके साथ उसका नाम सदा स्मरणीय बना रहेगा।**

[५]

यह सब पढ़ चुकने पर भी लोग आजकल की भीषण दशा को देखेंगे और इसी बुरी स्थिति से होश-हवास खोकर कहेंगे "ब्रिटिश साम्राज्य की ताकत देखिए और साथ ही अपनी बर्बाद हालत की ओर निगाह कीजिए। तुम्हारी सब आशायें निरर्थक हैं?" उनसे

मैं कहूँगा, "इस शुद्ध सत्य को ध्यान में रक्खो, जातियाँ जीवित रहती हैं और सम्राज्य नष्ट होते चले जाते हैं। प्राचीन काल के साम्राज्य आज कहाँ है? आजकल के साम्राज्यों के भीतर भी उनके नाश का बीज छिपा हुआ है। जिन जातियों ने प्राचीन साम्राज्यों को उड़ते हुए तथा राज्य करते हुए देखा है, आज उनके वंशधर उनके प्रतिनिधि बनकर विद्यमान हैं। पर इन जातियों का जिन अत्याचारी शासकों से पाला पड़ा था वे मर गये हैं और दफ़नाये जा चुके हैं। जातियां जीवित रह गईं और साम्राज्य उजड़ गये। संसार की वर्तमान जातियों के वंशधर उस समय भी ज़िंदा रहेंगे जब कि वे साम्राज्य जो इस समय प्रभुता के लिए लड़ रहे हैं सब मिट्टी में मिल जायँगे। हमारा अस्तित्व बना रहेगा और हमारे कार्य सफलता का परिणाम तथा हमारे भावी पद का गौरव बतायगा कि हम में मातृ-भूमि के प्रति कितनी भक्ति थी।"

(६)

क्या सब दलों के विचारशील पुरुषों की यह अभिलाषा नहीं है कि हमारी इस लंबी लड़ाई का अन्त हो जाय और प्रतिष्ठा-पूर्वक स्थायी सन्धि हो जाय? इस संधि की शांति में देश का प्राण दम ले सकता है, उसमें नई जान आ सकती है और वह अपने को व्यक्त कर सकता है। इस शांति में ही संगीत, कला और काव्य स्वतंत्रता के आल्हाद को अनवरत आनंद के साथ

प्रवाहित कर सकते हैं। हमारे आज-कल के दमन का साक्षी-स्वरूप यह अगाध साहित्य ज्योति पाकर जगमगा सकता है। हम सब यही स्वप्न देख रहे हैं, क्योंकि जबतक हमारा ब्रिटिश साम्राज्य से किसी प्रकार का सम्बंध रहेगा, तब तक हम कुछ-न-कुछ पराधीन बने रहेंगे। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता। ऐसा मूर्ख कौन है जो आशा करे कि जब तक ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनता जतलानेवाला सम्बंध कायम है, तब तक ब्रिटिश पार्लमेण्ट के साथ हमारी टक्कर न होगी। यदि कोई ऐसा है तो वह संसार के अनुभव तथा इतिहास के विरुद्ध जाता है। इस सबंध के भीतर दो स्वार्थ छिपे रहेंगे। अगरेज अपना स्वार्थ चाहेंगे और हम अपना, और ये दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होंगे।

सोचिए, यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र के भीतर संकीर्ण और उदार दलों में कैसा बखेड़ा होता है। एक दल की आँखों में दूसरे दल के विचार सदा ही छल कपट से भरे हुए, शंका-जनक तथा उलटे जँचते हैं और ये दल किसी तरह सहमत नहीं होते। कभी-कभी तो ये एक दूसरे के ऊपर विश्वासघात का दोष मढ़ते हैं। इसमें सुलह कभी नहीं होती। दलबन्दी का यही नियम है। ऐसी स्थिति में जब कि इस झगड़े में दो जातियों का प्रश्न आ पड़ता है, जब कि जनता दलों में विभक्त नहीं, बल्कि जातियों में बँटी हुई होती है, तब सन्धि की आशा कहां? यह निश्चय ही निष्फल आशा है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हमारी जाति इसलिए भिन्न नहीं है कि हम 'गेलिक' वंश के हैं, किन्तु हम इसलिए अलग हैं कि हमारे देश अलग-अलग हैं और हम मानव-जाति के भिन्न-भिन्न परिवारों से बने हुए हैं। यदि हम सब अग-

रेजों के ही वंशज होते तो भी हम में भेद रहता। इसका ऐतिहासिक उदाहरण अमेरिका का संयुक्त राज्य है। इससे मेरी बात सहज समझ में आ सकती है।

जब किसी आदमी के लड़के बड़े हो जाते हैं, वे अपना अलग-अलग कुटुम्ब कर लेते हैं और स्वच्छन्द होकर रहते हैं। उनका अपने पूर्वजों के प्रति सदा प्रेम रहता है। किन्तु यदि पिता अपने लड़के की गृहस्थी में हस्तक्षेप करना चाहे और उसके कार्य को अपनी मर्जी पर चलाना चाहे तो उसी वक्त टण्टा खड़ा हो जाता है। इस विषय पर अधिक विचार करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। यदि आयर्लैण्ड के सब लोग अंग्रेजों के वंशज होते और इस रिश्ते से इङ्गलैंड दावा करता कि उससे आयर्लैंड का सम्बन्ध बना रहे और उसका उसपर आधिपत्य रहे, तो फौरन झगड़ा शुरू हो जाता और इसका एक ही परिणाम होता अर्थात् हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता।

हम चाहे किसी जाति के होते, इग्लैंड के साथ स्वभावतः पड़ोसी बनकर रहते। किन्तु अंग्रेजों ने हमें धोखा देना और तङ्ग करना पसन्द किया। और अब यह दशा हो गई है कि कई पीढ़ियों तक आपस में सद्भाव रहने पर इन बातों की स्मृति धुलेगी। मैं फिर यही बात कहता हूँ जिससे स्थायी संधि के विषय में हमारे विचारों में अस्पष्टता न रहे। **जबतक पराधीनता का दिखलावटी सम्बंध भी रहेगा, शांति नहीं रह सकती।** इस सम्बन्ध के प्रति रोष प्रकट करने तथा इसे ललकारने के लिए हमारे मनुष्यत्व का तेज प्रदीप्त हो उठेगा। इंगलैंड से सम्बंध-विच्छेद तथा समानता ही हमारे बीच मित्रता का

सम्बंध फिर स्थापित कर सकती है और कोई बात शांति स्थापित नहीं कर सकती। क्योंकि मानव चरित्र का इतिहास यही शिक्षा देता है कि व्यक्तिगत उन्नति से ही सर्वसाधारण मे सद्भाव फैलता है।

हम भले पड़ोसी हो सकते हैं, किन्तु साथ-ही-साथ भयंकर शत्रु भी हो सकते हैं। हमारा परम्परा का शत्रु अब और अधिक हमें अपनी बगल में रखकर चैन से नहीं रह सकता। **वर्तमान समय हमारे लिए आशाप्रद है। हमारा भविष्य प्रगति की ओर जा रहा है। हम अभीष्ट को प्राप्त करेंगे। हमें चेष्टा करनी चाहिए कि हम योग्य निकलें।**

(७)

हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हम अयोग्य सिद्ध न हों। सच बात यह है कि हमें इसी बात का बड़ा अन्देशा है। यदि अपने लिए स्वाधीनता प्राप्त करने में, देश को समृद्ध बनाने में, भविष्य को उन्नत करने मे हम अन्य राष्ट्रों की भूलों से सबक सीखें और महाशक्तियो की अपेक्षा अपना जीवन अच्छा न बनावें, तो हम एक उत्तम अवसर को हाथ से गँवा देंगे तथा इतिहास के पृष्ठों में हम असफल गिने जायँगे। आज तक बाह्य-विचार की दृष्टि से हम असफल गिने गये हैं, यद्यपि सदियों तक स्वतन्त्रता के संग्राम को जारी रखना ही हमारी जाज्वल्यमान विजय है। **मैदान मार लेने पर भी यदि हम जीत**

का दुरुपयोग करेंगे तो हमारी असल हार हो जायगी।

एक समय हम यूरोप के अग्रणी थे। स्वाधीनता को भली भाँति उपलब्ध करके हम फिर एक बार इसे रास्ता दिखलायेंगे। हमें उस भ्रम से सतर्क रहना चाहिए जो सर्वत्र फैला हुआ है। अर्थात् आजकल जैसे इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी पर किसी का दबाव नहीं है, उसी प्रकार हम भी दबाव से छूटना चाहते हैं और कुछ नहीं चाहते। हमे इस भ्रम से भी बचे रहना चाहिए कि यदि हम किसी प्रकार स्वाधीनता तक पहुँच जायें तब हम मनुष्योचित जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर सकते हैं। किन्तु इस बीच हम अपनी जीवन-चर्य्या के विषय में विशेष सावधान नहीं रह सकते। यह भ्रम की विकट छाया हमारे पथ को अन्धकारमय कर देती है और सुन्दर मनुष्य-जीवन तथा हमारे बीच में पर्दा डाल देती है। यह भ्रम ही हमें उस भीषण जीवन की ओर घसीट सकता है, जिसने संसार मे आज दिन तबाही मचा रक्खी है। हमें सावधान रहना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि हमें धनी-निर्धन, मालिक-मजदूर आदि के झगड़े आज ही तय कर देने चाहिए, किन्तु मेरे मत में प्रत्येक व्यक्ति को समझ लेना चाहिए कि उसका कर्तव्य उच्चविचार-युक्त तथा उदार-चरित बनना है। हमे यह सोचना चाहिए कि हमारा साथी हम से ठगे जाने के लिए नहीं, बल्कि भाई की तरह हमारी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए तथा गिरी हुई दशा से उठाये जाने के लिए पैदा हुआ है।

न तो स्वराज्य, न साधारणतंत्र और न अराजक

तंत्र ही हमारा उद्धार कर सकते हैं। हमारी स्वतंत्रता हमें शुद्ध हृदय और महान् आदर्श के ही द्वारा प्राप्त हो सकेगी। इसी तत्वज्ञान का प्रचार करना अत्यंत आवश्यक है।

हमें इस समय इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हमारा आज का काम हमारे भविष्य-जीवन का निर्णय करेगा। यदि स्वाधीनता के इस संग्राम में हम सतर्क न रहेंगे तो भविष्य में निर्मल न रह सकेंगे। मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो उदार चरित्र के प्रति उदासीन नहीं हैं, किन्तु इस आशंका से कि शुद्ध जीवन हमारे कार्य में अड़चन डालेगा और सफलता को असम्भव बना देगा, कठोर नैतिक जीवन से डरते हैं। हमें यह विचार कर अपनी गलती सुधार लेनी चाहिए कि समय हमारे अनुकूल हो रहा है। हमारे देश की ताक़त बढ़ रही है और शत्रु की मुट्ठी ढीली पड़ रही है।

जनता किश्तो से अधिकार लेने में सन्तुष्ट नहीं है। उसकी शक्ति अपने स्वत्वों को प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक बढ़ रही है और वह उन्हें लेने के लिए उपयुक्त हथियारों से सुसज्जित है। अपने ही समय में हम बहुत आगे बढ़ गये हैं। एक घटना इसे स्पष्ट कर देती है। बीस से भी कम साल हुए कि देशी भाषा तिरस्कार की दृष्टि से देखी जाती थी। आज इसके उद्धार करने का आन्दोलन इतना प्रबल हो गया है कि राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में इसे आवश्यक पाठ्य विषयों में रखना पड़ा है। इस शुभ चिह्न को देखकर क्या किसी को अब भी सन्देह हो सकता है कि समय

स्वाधीनता का मार्ग नहीं बना रहा है और हम विजय की ओर कूच नहीं कर रहे हैं ?

इसमें मुझे नाम-मात्र भी सन्देह नहीं है कि हम स्वाधीनता प्राप्त करेंगे, किन्तु इसका मुझे पूरा भरोसा नहीं है कि हम उसका सदुपयोग कर सकेंगे। क्योकि जगत मे सर्वत्र देखा जाता है कि इसका कितना शोचनीय दुरुपयोग किया जा रहा है। यह हमारा सुनिश्चित विचार होना चाहिए और हमें इसका बीड़ा उठा लेना चाहिए कि हमारा भावी इतिहास किसी भी तत्कालीन राष्ट्र से कम गौरवपूर्ण न हो। निस्सन्देह हम समृद्धि बढ़ाने की चेष्टा करेंगे, पर हमारी उत्कट इच्छा आदर्श बनने की रहेगी।

हम अपनी शक्ति बढ़ायँगे—दूसरे देशों को गुलाम बनाने के लिए नहीं बल्कि उनसे भ्रातृभाव को बढ़ाने तथा संसार की निर्बल जातियो की रक्षा करने के लिए। हम अपनी संस्थाओ का गौरव इसलिए नहीं बढ़ायँगे कि उनसे राष्ट्र की स्थिरता का निश्चय होगा, बल्कि नागरिको का सुख बढ़ाने के लिए। तभी हम प्राचीन काल के समान यूरोप के पथ-प्रदर्शक बन सकेंगे। हम सारी दुनियां को अर्थ-लोलुपता, निष्ठुर शासन तथा ईर्ष्या-पूर्ण और क्रूर राजनीति के दुःस्वप्न से जगा देंगे। संसार हमारी फिर से जगी हुई आत्मा तथा एक नवीन और सुंदर आदर्श को देखकर आश्चर्य मे मग्न हो जायगा और हम अपने राष्ट्र की नीव वास्तविक स्वाधीनता पर रक्खेंगे जो सदा बनी रहेगी।

तृतीय परिच्छेद
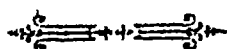
नैतिक बल

(१)

किसी महत्व-पूर्ण प्रश्न पर विचार करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह पड़ती है कि शब्दों को तोड़-मरोड़ कर उनका मौलिक तथा वास्तविक अर्थ बिगाड़ दिया जाता है। इसलिए यदि हम सफल विचार करना चाहते हैं तो हमें पहले अपने शब्दों का अर्थ निश्चित कर लेना चाहिए। हमारी दुर्बलता से उत्पन्न प्रत्येक भूल को क्षमा करने के लिए देश-भक्ति का नाम बदनाम किया जाता है, किन्तु देश-भक्ति के यदि कुछ मानो हैं तो वह ये हैं कि इससे मनुष्य पूर्ण आत्म-बल वाला तथा संकट के समय दृढ़-प्रतिज्ञ बने। जहाँ स्थानिक स्वराज्य की जरा भी वृद्धि हुई लोग आयरिश जाति की विजय घोषणा करने लगते हैं और होमरूल को पूर्ण स्वाधीनता समझ कर उसकी महिमा के गीत गाते हैं। लेकिन जब तक हमारे ऊपर पड़ोसी राज्य का कुछ भी दबाव है और हम उसे अपने से बड़ा मानते हैं, तब तक हम कुछ हद तक गुलाम ही हैं। इसलिए जो स्वाधीनता के लिए संग्राम कर रहे हैं वे इस सिद्धान्त को मानते हैं और पूरी आज़ादी के लिए डटे रहते हैं। **आंशिक स्वाधीनता कोई वस्तु नहीं है।** जब

हम स्वाधीनता को मुर्दा दिल आदमियों के हाथ में छोड़ देते हैं तो हम अपने कार्य को दूषित कर देते हैं तथा परिणाम में बाधा डाल देते हैं।

दूसरी ओर अटल सिद्धान्त वाला मनुष्य है। सर्वसाधारण उसे किस दृष्टि से देखते हैं? जब उसके हाथ में स्वतन्त्रता का काम आ जाता है, तब वह सदा ही समझौते से दूर रहने वाला जंगली तथा उजड्ड आदमी समझा जाता है। हम बहुधा उसका नाम सुनकर ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं, और उसकी वीरता की प्रशंसा करने के बदले यही समझते रहते हैं कि क्या कभी युक्ति-पूर्वक बातें करने पर उसकी समझ मे हमारा सिद्धान्त आ सकता है? यह नहीं जानते कि **सच्चा अनमेली आदमी सत्य, का निष्कंटक उपासक है।**

पराधीनता के विरुद्ध लड़ने वालों में कई लोग स्वतन्त्रता के पक्ष में इसलिए कार्य करते हैं कि इंगलैण्ड, फ्रांस और जर्मनी इनके द्वारा ऐश्वर्यशाली बन गये। किन्तु जब हम उन साधनों पर विचार करते हैं जिनके द्वारा इन देशों ने शक्ति प्राप्त की है तो मालूम होता है कि हमारे यह मित्र सच्ची स्वाधीनता तथा स्वेच्छाचारी जीवन में फर्क नही समझते। मेरी समझ में तो किसी विषय पर विचार करने के पहले हमे विशेष अर्थयुक्त शब्दों की परिभाषा ठीक कर लेनी चाहिए। एक ऐसे ही शब्द की परिभाषा मैं यहाँ भली भांति बता देना चाहता हूं। आज कल वाग्विवाद में जितने चिकने-चुपडे शब्द काम में लाये जाते हैं उनमे सब से अधिक गड़बड़ी "नैतिक बल" के अर्थ के विषय में फैली हुई है।

(२)

आयर्लैंड में प्रायः सौ वर्ष से प्रत्येक ऐसे राज नीतिज्ञ की दुर्बलता छिपाने के लिए जो मातृभूमि की पूरी स्वाधीनता के लिए लड़ने को अनिच्छुक अथवा भयभीत रहता है 'नैतिक बल' शब्द का निरंतर दुरुपयोग किया जाता रहा है। वर्तमान समय में ऐसे आदमी देखने में आते हैं, जिनमें नैतिक साहस का अभाव होने पर भी वे नैतिक बल के नाम पर काम कर रहे हैं। दूसरी ओर ऐसे आदमी हैं जिनकी नस-नस में नैतिक बल भरा हुआ है, पर वे पशु-बल के उपासक बतलाये जाकर हँसी में उड़ा दिये जाते हैं। इस गड़बड़ी को साफ करने के लिए हमें नैतिक बल और नैतिक दुर्बलता का भेद समझ लेना चाहिए।

यह भेद महत्व का है। चाहे हम नैतिक साहस कहें, चरित्रबल कहे या नैतिक शक्ति कहें, सबका अर्थ एक ही है। यह मन और हृदय का वह श्रेष्ठ गुण है, जो मनुष्य को पशुबल की प्रत्येक शक्तिके सामने अजेय खड़ा रखता है। मैं इसका नाम नैतिक बल रखता हूँ और इसकी परिभाषा यों रखना चाहता हूँ कि नैतिक दृष्टि से बली वह है जो किसी काम को उचित, आवश्यक तथा श्रद्धा के योग्य समझ, फल की पर्वा न कर, सत्य के समान उसकी रक्षा करने को डटा रहता है। वह चञ्चल सिड़ी नहीं है जिसे अपने पागलपन के परिणाम की नाम मात्र भी पर्वा न हो, जो बावलेपन की आशा कर रहा हो और उससे जो तबाही

फैलेगी उसके प्रति उदासीन हो। कदापि नहीं, उसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि सच्ची बात ही अच्छी बात है और उचित रूप से पालन की हुई इस भली बात का बुरा परिणाम नहीं हो सकता। ऐसा वीर अपने कार्य की भली या बुरी गति को शान्त-चित्त से देखता है। किसी कड़ी परीक्षा के समय अपने साहस पर पूरा भरोसा न होने के कारण चाहे वह घबड़ावे; किन्तु अपने पक्ष की श्रेष्ठता और अपने कार्य के परिणाम की महत्तापर वह सदा शान्ति-पूर्वक विश्वास रखता है। ऐसे बली पुरुष की अपने साहस के प्रति घबड़ाहट शीघ्र दूर हो जाती है। क्योंकि **महान् कार्य महान् आत्माओं को पैदा करता है।** ऐसे कई लोग जो डरते-डरते काम हाथ मे लेते हैं वीर गति से मरते हैं। यह बात महान् आदर्शों की रक्षा के लिए लड़ने वाले मनुष्यों की आश्चर्य-जनक तथा अपूर्व प्रसन्नचित्तता का रहस्य बतलाती है। दुर्बल प्रकृति के लोग इस रहस्य को कम समझते हैं।

स्वाधीनता का सैनिक समझता है कि सत्य के संग्राम में वह आगे बढ़ा हुआ है। वह जानता है कि उसकी विजय संसार को सुन्दर बनायेगी। यह भी उसे मालूम है कि यदि उसे दूसरों को कष्ट देना पड़े या स्वयं कष्ट भोगना पड़े तो वह पीड़ितों के उद्धार के लिए, पराधीनता की जंज़ीर से जकड़े हुओं के बंधनों को तोड़ने के लिए, जो देश के लिए जान दे रहे हैं उनका गौरव बढ़ाने के लिए, तथा देश की भावी सन्तान को सुखी तथा निश्चिन्त

बनाने के लिए होगा।

इस संग्राम के प्रत्येक पहलू में जो शक्ति उसे सम्हाले हुए रक्खेगी, उस शक्ति के लिए सब से पहले दृढ़ तथा धीर चित्त की आवश्यकता है। सार यह है कि उसमे नैतिक बल अवश्य हो। उस पुरुष को, जो सेना के साथ आक्रमण करने में ही वीर रह सकता है, जब अकेला खड़ा रहना पडेगा, तब उसकी वीरता काफूर हो जायगी। **सब देश बंधुओं को यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि, जबतक मातृभूमि अपनी निज की पलटने नहीं खड़ी कर सकती, ऐसे आदमियों की बराबर आवश्यकता पड़ेगी, जो अकेले खड़े होकर लड़ने की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकें।** यह सबसे विकट, सबसे श्रेष्ठ और वह परीक्षा है जो निश्चित तथा महान् विजय दिलाती है, क्योंकि **एक सशस्त्र पुरुष असंख्य जनता का सामना नहीं कर सकता और न एक सेना अगणित दलों पर विजय प्राप्त कर सकती है। लेकिन संसार के सब साम्राज्यों की सारी सेनायें एक सच्चे आदमी की आत्मा को नहीं जीत सकतीं, वह अकेला ही बाज़ी मार ले जाता है।**

(३)

प्रत्येक दास-भाव का विरोध करने की—जो नैतिक बल के नाम से पुकारा जाता है—हमने इतनी बड़ी आवश्यकता समझी,

कि हममे से वे लोग, जो अपनी मनुष्यता का प्रमाण देना चाहते थे, गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने लगे, कि साथ-साथ शारीरिक बल की भी परख होनी चाहिए। विपरीत समय की नीचता से हम जितना अधिक जलने लगे, उतना ही अधिक तथा बार-बार हम शारीरिक बल की परख के लिए पुकार मचाने लगे कि "फिर से नया जीवन दान करने वाला समय आ पहुँचा है और दूषित वायु शुद्ध की जानी चाहिए।" हमारे विचार में अजेय आत्मा वाले पुरुष की सब से कड़ी परीक्षा की पक्की कसौटी अत्याचारी की एक मात्र शक्ति अर्थात् पशुबल का अवलम्बन है। हमने युद्धक्षेत्रो की मारकाट के झूठे गीत गाये हैं। हमने शत्रु के रक्त-सागर में तैरने की प्रशंसा की है, मानों रक्तमय युद्धक्षेत्र अतीव सुन्दर है। हमने शान्ति के प्रति बड़ी घृणा दिखलायी है, मानों प्रत्येक रण पुलकित करने वाला है। किन्तु युद्धक्षेत्र में एक प्रसिद्ध सेनापति ने कहा था कि समर रौरव है। यह भले ही अत्युक्ति हो, किन्तु इस चेतावनी मे वह भीषण सत्य है जो सदा ध्यान में रहना चाहिए। यदि हममे से कोई अब भी प्रतिहिंसा के लिए परम आवश्यक बात को छोड़ने को निवेदन किये जाने पर नाक-भौं सिकोड़ता है तो उसे अपने हृदय के भीतर टटोलना चाहिए और विचार करना चाहिए कि किसी बदनाम, विश्वास-घाती अथवा दोषी की मृत्यु से उसके हृदय पर कैसे भाव उत्पन्न होते हैं। ऐसे अवसर पर हृदय में शान्ति प्राप्त नहीं होती, किन्तु भय का भाव प्रधान होता है। मृत्यु हम सब को विचारशील बना देती है। किन्तु मौत से दूर रहने पर बहुधा यह बात विश्वास-योग्य नहीं जँचती और मनुष्य स्वतन्त्रता रूपी जहाज के शत्रु

के रक्त को चीरते हुए पार करने की स्तुति गला फाड़कर करता रहता है। मैं उससे कहता हूँ "बस रुक जा"। तू अपनी भूल को साधारण दुर्घटना की भयंकरता तथा मुर्गे मेंढ़ों आदि की लड़ाई पर विचार करके सुधार सकता है।

(४)

हां, युद्ध का सामना करना पड़ता है और खून बहाना पड़ता है। आनन्द से नहीं—किन्तु दारुण आवश्यकता के कारण—क्योंकि जाति में ऐसी घोर नैतिक वीभत्सता वर्तमान है, जो दारुण शारीरिक वीभत्सता से बहुत गिरी हुई है। निर्भीक आत्मा के लिए स्वाधीनता अपरित्याज्य है और इसलिए घोर-से-घोर यन्त्रणा सहकर भी स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए। आत्मा शरीर से बड़ी है। और युद्ध की न्याय्यता का यही प्रमाण है। यदि लड़ाई करने में आगा-पीछा सोचने से प्रस्तुत स्वाधीनता का हरण होता है या हम विद्यमान गुलामी में ही अकर्मण्य होकर पडे सड़ते हैं, तो प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि यदि वह खड़ा है तो लड़ पड़े, यदि गिराकर दबाया हुआ है तो बागी बन खडा हो। जबतक स्वाधीनता पक्की न हो जाय, उसे क्षणभर भी शान्ति से न रहना चाहिए; क्योंकि जिस जाति की आजादी छिन गई है, उसको जो नैतिक महामारी अपना ग्रास बना लेती है, वह, मनुष्यों के शरीर के एक अंग को दूसरे अंग से काट देने से जो अनर्थ पैदा होता है, उससे अधिक अनर्थकारी है। देह नश्वर है; आत्मा अमर है। जीवन मे इससे बड़ा अनिष्ट कोई नहीं हो सकता कि इस अविनाशी अंश का पतन हो जाय। जरा इन सब घृणित बातों तथा नीचता की ओर ले जाने वाली वृत्तियो का विचार तो कीजिए, जो गुलामी की

हालत में पड़े हुए लोगों का खून चूस लेती हैं। अधिकारी लोग अपनी प्रभुता स्थिर रखने के लिए घूस देते हैं। समयानुसार अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले लोग प्रत्येक सिद्धान्त का मोल ठहराते हैं। सार्वजनिक जीवन कलुषित हो जाता है। व्यक्तिगत जीवन मे मुर्दादिली छा जाती है। उच्च आदर्श वालों के लिए कठिन अवसर आ पड़ता है। उन्हे जघन्य आचरण से मुठ-भेड़ करनी पड़ती है। उनका धैर्य टूट जाता है और अन्त में उन्हें स्वाधीनता का वह झण्डा जो कभी वीरता के साथ ऊँचा फहराया गया था, चुपचाप छोड़ देना पड़ता है। फल यह होता है कि निरुत्साहियों की सख्या बढ़ जाती है और सर्व साधारण में अन्धेर, निरानन्द और निराशा फैल जाती है। मातृभूमि सर्वत्र उजड़ती हुई दिखलाई देती है।

जिस देश की स्वतंत्रता छिन गई है, वहाँ दुराचार, नीचता, कायरता, असहिष्णुता, तथा प्रत्येक पामर वृत्ति अन्धेरे में खड़ की तरह सरासर फूलती-फलती है और देश को झुलसा देती है। पराधीन देश का दृश्य और पराधीन लोगों की आत्मा घृणास्पद बन जाती है। उन्हें देख तबियत घबराने लगती है, वे भयानक मालूम पड़ते हैं—भयानक इसलिए कि उनके द्वारा उच्च सिद्धांत गिराये गये हैं—और गौरव पूर्ण भविष्य सकट में पड़ जाता है। यदि भूचाल ऐसे देश को चूर-चूर कर के महासागर में डुबो

देता, तो वह कम भयंकर होता। गुलामी की नैतिक महामारी से अपनी रक्षा करने के लिए, मनुष्य अचानक हथियार पकड़ते हैं और इसकी पर्वा नहीं करते कि संसार में इसका परिणाम क्या होगा।

जो लोग पार्थिव फल पर अधिक जोर देते हैं वह भी इससे अपनी रक्षा नहीं कर सकते क्योंकि नैतिक अस्वस्थता से ही शारीरिक ध्वंस शुरू होता है। इस मे कुछ विलम्ब भले ही हो जाय किन्तु फल अनिवार्य है। इस प्रकार शारीरिक शक्ति उचित व न्याय-संगत सिद्ध होती है। स्वयं नहीं, किन्तु नैतिक बल को प्रकट करने के कारण। जहाँ शारीरिक शक्ति उच्च सिद्धान्तों की नींव पर खड़ी नहीं रहती, वहाँ वह दुष्टता की मूर्ति बन जात है।

सच्चा विरोध नैतिक और शारीरिक बल के बीच नहीं है, किन्तु चरित्र-बल और चरित्र की दुर्बलता के बीच है। यही प्रधान भेद सब तरफ़ से भूला जा रहा है। जब अवसर आ पड़ता है और समय हमें बाध्य करता है तो हथियार उठाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। किन्तु इस घोर संकट में हमें अपना सयम नहीं खोना चाहिए। यदि हम शत्रुओं का खून बहाने को उछलते हैं, पशु-बल की कीर्ति गाते हैं तो हम स्वयं अत्याचारी बनकर इसकी पताका फहराते हैं और अपने सिर पर कलंक का टीका लगाते हैं। दूसरी ओर यदि हम ऐसे अवसर पर इस निठुर कार्य को करने में हिचकते हैं तो हम आत्मिक

बल का अभाव दिखलाते हैं तथा रण-कायरों को दुर्बलता और जंगलीपन की चरम सीमा तक पहुँचने देते हैं और वह चरित्र हीनता तथा विभीषिका पैदा करने देते हैं जो अन्त में हमारा नाश कर देगी।

आज़ादी का पक्का सिपाही पूरे ज़ोर से चोट मारने और अच्छी तरह शत्रु को पटकने में आनाकानी नहीं करेगा। वह जानता है कि उसकी दृढ़-प्रतिज्ञा पर ही स्वाधीनता का उद्धार तथा उसकी रक्षा निर्भर है। किन्तु वह सदा याद रक्खेगा कि अपने को क़ाबू में रखना ही वह उत्तम गुण है, जो मनुष्य को जानवरों से अलग करता है।

प्रतिहिंसा वृत्ति अत्याचारी और गुलामों का कायरता-पूर्ण आश्रय है और उदार-चरित्रता का मनुष्यता स्वच्छ अलंकार है। वह सदा यह भी ध्यान में रक्खेगा कि शत्रु की जान लेने के लिए हथियार नहीं उठा रहा है, किन्तु उसके दुष्कर्मों का नाश करने के लिए और इन दुष्कर्मों का नाश करने से वह केवल अपने ही को स्वाधीन नहीं करता, किन्तु अपने शत्रु का भी उद्धार करता है। हम में से अधिकांश लोगों के लिए सम्भवतः यह स्वप्न बहुत ही बड़ा हो, किन्तु उसको जो हमारे देश की समस्या मर्म को पहचानता है और अपने चरित्र को सन्मार्ग पर रखना चाहता है यह उचित जँचेगा।

वह घोर-से-घोर संग्राम से भी यह कदापि न

भूलेगा कि आज तथा कल का शत्रु बाद को हमारा सखा सहयोद्धा बन सकता है।

(५)

यदि यह परम आवश्यक है कि हमको बिना तैयारी किये लड़ाई में कूदने से पहले अपना प्रमुख सिद्धान्त निश्चित रूप से स्थिर कर लेना चाहिए, तो यह और भी परम आवश्यक है कि हमें इस समय अपना चित्त शुद्ध करके सत्य की ओर लगाना चाहिए, क्योंकि **हमें यह हानिकर अभ्यास पड़ गया है कि समय को अनुपयुक्त बतलाकर महत्वपूर्ण प्रश्नों को दूसरे समय के लिए स्थगित कर देते हैं।** साफ बात यह है कि हममें चरित्र-बल का अभाव और वह गुण जो समरकाल हमारी रक्षा करेगा गुलामी के समय हमारा उद्धार करने के लिए उत्तम नीति का काम देगा।

इस पर अधिक लिखना व्यर्थ है कि दासता की दशा में नीच वृत्तियाँ बढ़ती हैं। जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी दशा में हम अपने को बाध्य समझ कर प्रत्येक अवगुण को सचेष्ट होकर भगावें। स्वाधीनता की सामान्य अवस्था में कई क्षणिक दुर्गुण उत्पन्न हो सकते हैं, लेकिन वे अनर्थकारी नहीं होते। जनता की स्वाधीनता की उज्ज्वल ज्योति में वे उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य के आलोक में रोग के कीटाणु। जहाँ स्वाधीनता का गला घोटा जाता है और लोगों का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है वहाँ छोटी से-छोटी बुराई को भी बढ़ाने के लिए अच्छी भूमि मिल

जाती है। वह पनपती और फैलने लगती है। इस प्रकार बुराइयों की संख्या बढ़ती है और मुल्क चौपट हो जाता है। यही कारण है कि उदारचरित नेताओ को, जो पतित जाति के उद्धारो की चेष्टा करते हैं, प्रत्येक ऐसी छोटी त्रुटि और दुर्बलता का ध्यान रखना चाहिए, जो स्वाधीनता के समय हमारी आत्मा को अशान्त न कर सके। आँखों के सामने आने पर ही प्रत्येक कठिनाई का निर्णय करना उपयुक्त है। इस कार्य मे टालमटोल करना विपत्ति को निमंत्रण देना है। दृढ़ निश्चय ही हमे हमारी अनेक कठिनाइयों से पार उतारेगा। किन्तु किसी विशेष तथा आवश्यक समस्या से साफ निकल जाने के लिए नीति का बहाना ढूँढा जाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि सब कोई इस प्रश्न पर सहमत नही होंगे। दूसरी ओर से आवाज आती है कि मूर्ख लोग बहक जायँगे। ऐसे टालबाजों को कोई-न-कोई बहाना मिल ही जाता है। कठिनाई यह है कि **प्रत्येक पक्ष सत्य के एक अंश को पसन्द करता है। कोई पक्ष सोलहों आने सत्य नहीं चाहता। लेकिन हमें विशुद्ध सत्य का अक्षर-अक्षर ग्रहण करना चाहिए। हम वह अर्थ नहीं मानना चाहते जिसे अज्ञ जनता भला समझे।** और न दार्शनिकों की काट-छांट ही हमें पसन्द है। हम सत्य-विशुद्ध सत्य के सिवा कुछ नही चाहते। प्रत्येक ऐसे कार्य के लिए जो जनता के प्रति हमारा धर्म है और जिस पर विचार करने का सर्वसाधारण को अधिकार है, हमे इसी नियम का पालन करना चाहिए।

चूँकि हमें ज्वलन्त प्रश्नों का निर्णय करने से घोर कठिनता का सामना करना पड़ता है और इस काम में हम संकट मे भी पड़ सकते हैं इसलिए ऐसे प्रश्नों पर धूल डालने की बुरी प्रवृत्ति हम लोगो में जड़ पकड़ रही है। परन्तु परिणाम चाहे कुछ हो, हमें इसका सामना करना ही चाहिए। **बहुमत देखकर लोगों का मेल कराना भले ही अच्छा हो, पर ऐसा मेल विना परस्पर विश्वास के नहीं होता।** स्वतन्त्रता के संग्राम में यह छिपा हुआ अविश्वास भूत के समान चिपटकर हमारा नाश करने के लिए प्रवल आशंका में परिणत हो जायगा। हमे इसे तुरन्त दूर कर देना चाहिए। **हमें जनता को सिखाना चाहिए कि मतभेद की बातों पर आदर, सहनशीलता तथा तेज के साथ विचार करना ठीक है** और जीवन का ऐसा सर्व-सम्मत मार्ग ढूँढ निकालना चाहिए जो सब के हृदय में परस्पर विश्वास उत्पन्न कर दे। यह सत्य बात छिपाना हमारे लिए अत्यन्त हानिकर होगा कि हम वर्तमान समय में अपने प्रति विश्वास पैदा करने में असमर्थ हैं। स्थिति को सुलझाने के लिए सत्य का अवलम्बन ही एक आवश्यक कार्य है। हम तुरन्त सफल होने की आशा नहीं कर सकते, तो भी हमे इस परम ध्येय को सदा अपने सामने रखना चाहिए। इसके विरुद्ध चारो ओर से आपत्ति की जायगी। अनुभवी सांसारिक मनुष्य जो अपने ही सुख को चिन्ता करता है, आपत्ति करेगा। वह नीच व्यापारी जो अपने ही मुनाफे की पर्वा करता है, एतराज करेगा। वह नीतिज्ञ पुरुष जो सदा बीच-

विचाव का रास्ता ढूंढ निकालना चाहता है उज्र करेगा। एक विशेष प्रकार का धार्मिक निराशावादी जो प्रत्येक प्रस्ताव में संकट की ही गंध पाता है, तथा कई और भी आपत्ति करेंगे। हमें स्वार्थी के सुख और व्यापारी के लाभ का विचार करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु नीतिज्ञ तथा धार्मिक निराशावादी के विषय में कुछ कहना चाहिए।

नीतिज्ञ पुरुष सत्य पर स्वच्छ विचार करने के बदले काम के भले-बुरे परिणाम को देखता है। वह कहता है, "भाई! तुम और हम कुछ विषयो पर निजू तौर पर वादविवाद कर सकते हैं हम शिक्षित हैं और बात को समझते हैं। मूर्ख लोग कुछ नहीं समझते और उन्हे समझदार मानकर तुम बुराई पैदा करते हो। यह बुद्धिमानी नहीं है।" उसके प्रति मेरा यह उत्तर है "तुम सम्पूर्ण सत्य को प्रकट करने मे डर रहे हो। मैं सत्य को छिपाने में डरता हूँ। तुम्हे नासमझ लोगो के सामने बात खोलने में हानि की आशका है। मुझे तुमसे हानि की आशंका है कि तुम बात को दबा रहे हो। मैं यह नही कहता कि तुम इन मूर्खों को सच्ची-सच्ची बात कहने से ज्ञानी बना सकते हो, पर मेरा कहना है कि अपनी ही आत्मिक उन्नति के लिए तुम्हे अखंड सत्य प्रकट करना चाहिए।"

नीतिज्ञ मित्र की युक्तियो में छिद्र यह है कि वह जीवन को सकुचित बनाकर देखता है और सदा अपने साथ रहने वाले पदार्थ के अपरिमित महत्व को नहीं देखता। मनुष्य यदि सच बोलने की अपेक्षा अपनी अल्पबुद्धि का परिचय देने की आवश्य-

कता अधिक समझता है, तो वह पागलपन करता है। मैं ऐसी नीति का तिरस्कार करता हूँ।

अब मैं दो बात अपने धार्मिक निराशावादी मित्र से कहूंगा। मैं धर्म का गहरा अर्थ लगाता हूँ। **जीवन के प्रश्नों को यों ही छोड़ देना नहीं बल्कि उनको हल करना मैं धर्म समझता हूँ।** मैं नतीजे की लापर्वाही के कारण नहीं, किन्तु अपने दृढ़ विश्वास के सामने सिर नमाकर उससे निडर होने को कहता हूँ। **भय और धर्म परस्पर विरोधी हैं।**

(६)

सारे परिच्छेद का सार यह है कि आजकल के तथा आने वाले संग्राम के प्रत्येक स्वरूप में सशक्त शरीर से सबल आत्मा की अधिक आवश्यक्ता है। इसमें जोश होना चाहिए, किन्तु वह चित्त के द्वारा संयत और नियत्रित होना चाहिए। वर्तमान समय में हमारा मुख्य काम वीरता तथा तेज बढ़ाने का है। ये गुण प्रत्येक मनुष्य की आत्मा को अजेय दुर्ग बना देंगे। **सेनाएँ हार सकती हैं, किन्तु वीर और तेजस्वी आत्मा सदा अथक रहती है। जिस चोले में यह आत्मा वास करती है, वह चूर चूर किया जा सकता है; पर यह आत्मा शरीर छोड़ते समय दूसरों में जान डाल देती है, जिससे उनके हृदयों में कार्य करने के लिए आग-सी भड़क उठती है। बस इस संग्राम का परिणाम पूरी विजय है। दृढ़-प्रतिज्ञ और सच्चा आदमी अंत में**

अवश्य विजयी होता है। शब्द-जाल उसे मैदान से नहीं भगा सकता, किसी प्रकार की दुर्बलता उसे पाशविक प्रतिहिंसा की ओर नहीं झुका सकती; न तो वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार छोड़ेगा और न अपनी प्रकृति को बिगाड़ेगा। प्रत्येक सङ्कट में वह अविचलित रहता है, और प्रत्येक कार्य उसकी शुद्धता का परिचय देता है।

वीर सहयोद्धाओ! आनन्द मनाओ कि हमारी आत्माओं पर अभी हमारा ही अधिकार है। इस निर्जीव तथा आनन्द शून्य समय में भी हमारे पुराने तेज की एक झलक फिर से दिखाई देने लगी है। वह सरगर्म पुराना जोश हमें फिर से जगा रहा है। हम मातृ-भूमि के अधिकारों की रक्षा करने, उसकी स्वतन्त्रता के लिए जूझने और वर्तमान पीढ़ी को गौरव का पद दिलाने को आगे बढ़ रहे हैं। हमारी जीत होगी। शत्रु अपने लड़ाई के जहाज तथा असंख्य सैनिकों का गर्व करता रहे। **रोम और कार्थेज की फ़ौज आज कहाँ है? पर स्वतंत्रता की वह लहर, जिसे उन्होंने लल-कारा था, आज भी मौजें ले रही है और तरुण जाति में जीवन डाल रही है।** आओ, हम सब अपना सिर ऊंचा करें। हम संग्राम मे अपने झण्डे को बहादुरी के साथ पकड़े रहेंगे। हम अपनी आत्मा को पृथक् सिद्धान्तानुकूल, निष्कपट एवं निर्भीक महान कार्यों के लिए उपयुक्त एवं अदम्य बनावें। अदम्य उत्साह के द्वारा ही हमारी पूरी विजय निश्चित होगी।

चतुर्थ परिच्छेद
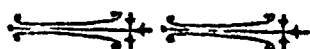
शत्रु और मित्र

(१)

शत्रु हमारे वे भाई हैं जिनसे हम न्यारे हो गये हैं। इस मौलिक सत्य के आधार पर ही हम स्वदेश के सब दलों में यथार्थ देश-भक्ति तथा अपने पुराने शत्रु इङ्गलैण्ड के साथ स्थायी संधि स्थापित करने की आशा कर रहे हैं। दुराग्रह के भावों के कारण अपने ही लोगों के भिन्न-भिन्न दलों में बिल्कुल विरोधी विभाग हो गये हैं और आयर्लैण्ड और इङ्गलैण्ड के बीच घृणा की ऐसी दीवार खड़ी हो गई है जिसे पार करना प्रायः असम्भव है। **यदि मातृ-भूमि को पुनर्जीवित करना है तो देश में एकता होनी चाहिए।** यदि संसार को पुनर्जीवित करना है, तो हमे सारे संसार में एकता स्थापित करनी चाहिए। यह एकता एक शासक के आधीन रहने से नहीं, किन्तु सब जातियों में भाईचारा फैलाने से हो सकती है। इस उच्च लक्ष्य को प्राप्त करना, प्रत्येक व्यक्ति व राष्ट्र का कर्त्तव्य है। इस लक्ष्य को हम न भूलें, इस हेतु हमें बार-बार अपने विचारों का संशोधन करने के लिए इस सिद्धान्त का मनन करना चाहिए कि मनुष्य जाति की उत्पत्ति एक आदि पुरुष से हुई है। हमें

संसार की उस सुन्दरता पर ग़ौर करना चाहिए, जो सबकी पैतृक संपत्ति है। हमे उन आशाओं और आशंकाओ पर भी ध्यान देना चाहिए जो मनुष्य जाति में समान हैं और सब से अधिक इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि जगत की सब जातियो का स्वार्थ आपस मे उलझा हुआ है।

उक्त बातो को दिल से भुलाकर यदि कोई जाति अपने अधीन भूभाग को अनीति-पूर्ण शासन तथा पामरता के कार्यों से कलङ्कित करती है, तो वह संसार की शान्ति को सकट में डालती है। उक्त सिद्धांतों को न जानते हुए भी एक पराक्रमी जाति अपने ऐसे पड़ोसी से भिड़ जाती है, जो इस समय उसका वैरी बना हुआ है और वह जाति अपने सहज चरित्र की आज्ञा के अनुसार वीरता तथा उदारता से लड़ती है तो वह अपने शत्रु का ध्यान पवित्र जीवन की ओर लगा देती है। यह भी संभव है कि वह अपने शत्रु का जीवन सुखमय बना दे; उस सुख-स्वप्न की ओर उसका मुँह फेर दे, जिस ओर उसकी पाप में डूबी हुई मलीन आत्मा कदापि न जा सकती थी।

(२)

स्वतन्त्रता देवी के मंदिर की ओर जाने वाले यात्रियों के मेल की कठिन परीक्षा होगी। **देववासियों की मित्रता भी एक दिन में नहीं स्थापित हो सकती, विदेशियों से तो बहुत दिनों में मेल हो सकता है।**

इस पथ से हट जाने के लिए तथा जो थोड़े से सैनिक दृढ़ विश्वास के साथ झंडे को पकड़े खड़े हैं, उन्हे तितर बितर करने

के लिए कितने ही प्रलोभन दिये जायँगे। इसलिए हमें उस सम्बन्ध को भली-भांति समझ लेना चाहिए जो हम लोगों को अनेक विघ्न-बाधाओं का घोर सामना करते हुए भी स्वतंत्रता की ओर आगे बढ़ने में एक किये हुए है। सच्चे भाईचारे का सम्बन्ध ही ऐसी एकता स्थापित कर सकता है। किन्तु हम इस सत्य को बहुत ही कम हृदयङ्गम करते हैं। जब प्रगाढ़ और प्रचण्ड देश-भक्ति भिन्न-भिन्न मतों के लोगों में सहयोद्धाओ का भाव भर कर उन्हें स्वच्छन्दता-पूर्वक एक उद्देश्य के लिए मिला देती है, तथा जब सब सच्चे मतों में यह मेल देखने में आता है तब दूसरे मुर्दादिल और कम मुस्तैद लोग इस ऐक्य को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, और यदि वे हम में शामिल भी होते हैं तो अनिच्छा पूर्वक। और लोग तो पास ही नहीं फटकते, वे समझते हैं कि स्वतंत्रता के भक्त भ्रम मे भूले हुए हैं। वे यह सोचते हैं कि इस समय मिले हुए इन भिन्न-भिन्न मतो के लोगों में फूट पैदा कर देने के लिए मौक़ा पड़ने पर किसी पुरानी बात को उखेड़ देना ही काफी होगा और वे इतने ही से पुराने द्वेष मे नया जहर मिलाकर एक दूसरे पर टूट पड़ेंगे। इन विचारों का हमें अपने कार्यों से खण्डन करना पड़ेगा।

हमारे अपने देश का ही उदाहरण लीजिए। यहाँ तीन मतों के लोग हैं। कुछ कैथोलिक हैं, कुछ प्रोटेस्टेण्ट हैं और कुछ नास्तिक हैं। एक मत के सम्पूर्ण आचार-विचार, दूसरे मत वालों को पूर्णतया मान्य न हो, किन्तु इन आचार-विचारों का एक अंश ऐसा है जो सब की तंग चहारदीवारी से बाहर फैला हुआ है और जिसके भीतर हम एक आशा, एक उच्च मनोरथ तथा एक सुंदर आदर्श

से प्रेरित हो, आपस में समझौता कर, सहयोद्धा बने हैं और परस्पर मिले हुए हैं। हो सकता है कि पृथक्-पृथक् मतवालों के लिए देश-कार्य का महत्व कम या ज्यादा हो; हो सकता है कि आदर्श की उत्पत्ति और उसका अन्तिम ध्येय दोनों के लिए एक ही न हो; किन्तु वह सुन्दर और अभ्रांत पदार्थ, जिस के लिए वे लड़ रहे हैं, विशुद्ध सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन, परस्पर अधिक शिष्ट व्यवहार समाज और जाति के लिए उच्च आदर्शों की स्थापना, उत्कृष्ट सहन-शक्ति, साहस तथा स्वतंत्रता के विषय में सब का एक मत है। उक्त बातों पर चोट पड़ने पर सब में नैसर्गिक चेतना जागृत हो जाती है। इसलिए जो सहानुभूति भिन्न-भिन्न मतवालों को मिला रखती है, वह प्रचण्ड, प्रगाढ़ तथा पक्की होती है।

इन लोगो की मेल-मुलाकात ध्यान से देखिए, यह किस प्रेम से आपस मे मिलते हैं। जरा गौर से देखिए—एक बड़ा काम करने वाला है। उसके मुँह पर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं। लोग उसका कैसा हार्दिक अभिवादन करते हैं। दूसरे की आँखें काम मे व्यस्त भाई के लिए आतुर हैं, तीसरे की आँखें विजय के आदर्श से चमक रही हैं। आप देखेंगे कि इन सब में परस्पर आन्तरिक श्रद्धा है, ये एक दूसरे को उत्साहित करते हैं तथा

स्वयं कष्ट उठाते हैं। निरुत्साह का चिन्ह इन में कभी नहीं पाया जाता, किन्तु सदा महान् विजय की शुभ आशा और महा-समर का परम आनन्द ही देखा जाता है। भिन्न भिन्न मतवालों का यह सहयोग दिखाऊ मित्रता का नहीं है, तो भी दूसरे लोग यह मेल देखकर आश्चर्य और संशय से सहम जाते हैं।

भिन्न-भिन्न मतों के ये स्वतन्त्रता के पुजारी अपने-अपने मजहबों के पूरे पाबन्द हैं, फिर भी इनमें आपस मे इतनी अधिक घनिष्ठता है कि मानों वे सब एक ही देवता के सामने सर झुकाते हैं। **संकीर्ण विचार वालों की दृष्टि में भिन्न-भिन्न मज़हब वालों में मार-काट होनी चाहिए, पर स्वतन्त्रता के इस संग्राम में वे सब साथ-साथ आगे बढ़ रहे हैं।** यह सब क्यों है? सम्भवतः इस प्रश्न का सब से अच्छा उत्तर वही दे सकेगा, जिसका धर्म सब से कट्टर है। वह कहेगा कि जिस क्षेत्र में हम सब मिलकर काम कर रहे हैं, वहाँ जिस सत्य ने हम सबको मिला रखा है, उसका अनुसरण करने का एक ही सन्मार्ग है और सहज बुद्धि से इस सन्मार्ग में आकर हम मिल गये हैं।

(३)

किन्तु भिन्न-भिन्न मतों के वे लोग जो मजबूती और ईमान-दारी से मेल को पक्का रखते हैं, कम हैं। × × × × उनके धैर्य की कठिन परीक्षा होगी और मनुष्यों के लिए यही जाँच की कसौटी है। × × × × **धर्म अलग-अलग होने के कारण शत्रुता रखने से संसार को**

वर्त्तमान समय में विद्यमान दुर्जनता और दुष्टता घटने के बदले और भी बढ़ेगी। इतिहास का कोई उदाहरण उठा लीजिए, प्रतिहिंसा की निस्सारता तथा मूर्खता साफ़ प्रकट होजाती है × × × निरी हिंसा प्रत्येक उदार चरित्र पुरुष के हृदय में घृणा पैदा कर देती है। सुनिए मेज़िनी क्या कहता है—"हमे हिंसा के द्वारा देश मे नई व्यवस्था स्थापित नही करनी है। इस प्रकार स्थापित की हुई व्यवस्था पुराने ढङ्ग की व्यवस्था से भले ही सुन्दर हो, किन्तु उसकी नींव जुल्म पर रहती है" × × × हमे खूब तङ्ग किया जायगा कि हम अपने सिद्धान्त छोड़ दें और पुराने झगड़े फिर खड़े करे, किन्तु उस समय हमें डटे रहना होगा। उस समय हमें दैवी आत्म-संयम से रहना होगा जिसके भीतर हमारी शक्ति का रहस्य छिपा हुआ है।

(४)

भले ही स्वतन्त्रता की ध्वजा फहराने वालों की संख्या कम हो, तो भी हम ज़ोर से कह सकते हैं कि हमें अन्त में सफलता की आशा है। जनता बिना परिणाम की आशा से न लड़ेगी। वह पूछेगी कि देश की उन्नति के क्या लक्षण दिखाई दे रहे हैं और विजय की ज्योति की झलक कहाँ है। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखेंगे तो सौभाग्यवश हम उन्नति के कुछ चिन्ह अवश्य ढूँढ़ निकालेंगे। निस्सन्देह पुरानी अदावत के बुरे लक्षण देखेंगे। हो सकता है कुछ लोग क्रोध मे आकर दङ्गा भी कर दें, किन्तु अब उपद्रवी लोग कम रह गए हैं और क्रोध में वह तीव्रता भी नहीं रह गई

है। जो लोग पहले दङ्गा करते थे वे अब भी करते हैं, किन्तु उन में अब वह उन्मत्तता नहीं रह गई है। आज कल के नवयुवक भले ही हमारे आदर्श से विमुख हों, किन्तु वे विपक्षियों की बातों की ओर से भी उदासीन हैं। वे इन बातों से अलग हैं और उन पर किसी पक्ष का प्रभाव नहीं पड़ा है। इन बातों को ध्यान में रख कर हमें निराश न होना चाहिए।

ज़रा विचार कीजिए, कि जो इस समय देश का काम कर रहे हैं, उन्होंने धीरे-धीरे टटोलते हुए वर्त्तमान नीति निश्चय की है। इससे पहले राजनैतिक जीवन अपने समय के लोकमत का अनुसरण करता था, किन्तु आज कल की ज्योति में वे बातें मन्द पड़ गई हैं; हमने उन नियमों को कृत्रिम समझा और उन्हें छोड़ दिया। यह हमारे पूर्वजों पर आक्षेप नहीं है। ××× जो काम वे अधूरा छोड़ गये हैं, हमें उसे हाथ में लेकर पूरा करना चाहिए।

हर पीढ़ी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने पूर्व-पुरुषों के अधूरा छोड़े हुए काम को उठावे और उसे पूरा कर के वह पैतृक सम्पत्ति अपने वंशजों के सुपुर्द कर दे। नवयुवक स्वयं यह कर्त्तव्य पहचान लेते हैं और हरेक पीढ़ी अपने संकीर्ण विचारों को छोड़कर सत्य का विकास करती हुई अपने बाप-दादा से एक कदम आगे ही बढ़ती है। इस बात को प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव से ही समझ सकता है कि इस समय जो गड़े मुर्दे उखाड़ जा रहे

हैं वे शीघ्र नष्ट हो जायँगे और उनका स्थान लेने कोई नहीं आयेगा।

(५)

सौभाग्य से देश-वासियों मे भाई-चारा स्थापित करने की दलीलें देने की अब आवश्यकता नहीं रही, किन्तु साथ-साथ हमारे दुर्भाग्यवश जनता न यह बात स्वीकार करती है और न इसे समझती है कि

जिन कारणों से हमें अपने देशवासियों के बीच मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, उन्हीं कारणों से इङ्गलैंड या किसी दूसरी जाति से—जिससे हम लड़ रहे हैं या आगे लड़ेंगे—भी मित्रता करनी चाहिए।

पड़ोसियों में स्नेह होना स्वाभाविक है। एक ही गली या एक ही मुहल्ले मे रहने वाले दो पड़ोसियों मे व्यक्तिगत प्रीति का कैसा मनोहर दृश्य देखने में आता है। वे एक दूसरे के सुख मे सुखी होते हैं, आपत्काल मे एक दूसरे की सहायता करते हैं और अपने प्रति दिन के काम बन्धुभाव से व मिलकर करते हैं। वे हरवक्त एक-दूसरे के हित में मेल की सार्थकता देखते हैं। मान लीजिए, किसी बुराई के कारण यह मित्र बिछुड़ गये। ऐसे समय पुरानी मैत्री द्वेष मे परिणत हो जाती है। जो पड़ोसी हमदर्दी के वक्त उन्हें प्रफुल्लित कर देता था, आज उनकी शत्रुता को उतना ही अधिक बढ़ाता है। जब-जब उनकी भेंट होती है, उनकी बातें एक-दूसरे के दिल मे चुभनेवाली होती हैं; उनके भाव परस्पर

तंग करने के होते हैं। जीवन के आनन्द को भ्रष्ट करने वाला यह तीता रस उनके सात्विक स्वभाव को विद्रोही जंचता है। उनके हृदय में घृणा को बाहर निकाल डालने की तथा पुरानी सौहार्दता को फिर से स्थापित करने की प्रबल लालसा होती है। हृदय के भीतर मेल करने की इच्छा रहने पर भी यह बिछुड़े हुए मित्र एक दूसरे के खून के प्यासे बने हुए हैं। कभी-कभी खराबी इस सीमा तक पहुँच जाती है और द्रोह इतना बढ़ जाता है कि पुराना मित्र-भाव फिर से स्थापित न होता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु जब तक कुछ भी आशा की झलक बाकी रहती है सच्ची आत्मा इस बात पर ध्यान लगाये रखती है; क्योंकि यदि जीवन के पूर्ण सौंदर्य को फिर से प्राप्त करना है और उसे सदा के लिए सुरक्षित रखना है, तो पुराना मित्र-भाव पुनःस्थापित करने के लिए सदैव सचेष्ट रहना चाहिए। व्यक्तियों के समान जातियों के लिए भी यही बात कही जा सकती है। यह बात जानकर हमें भविष्य में नई भूल से बचे रहना चाहिए। यह भूल अर्थात् साधन को परिणाम समझ लेना पुरानी है, किन्तु सदा नये रूप में दिखाई देती है।

व्यापक सन्धि का लक्ष्य प्रत्येक जाति को विशुद्ध स्वाधीनता देना, आत्मिक सिद्धि, मनुष्य के भीतर छिपे हुए गुणों और जीवन के आनन्द और उसकी पूर्णता को प्राप्त करना है। इसका मतलब यह नहीं है, कि चाहे जैसे भी हो, कुछ सिद्धान्तों का हनन करके, वह निकृष्ट सन्धि की जाय, जो गुलामी के ही समान है। इसका संदेश उस जाति को होश में लाना है, जिसने अपने उत्पातों से दूसरी जाति को दुर्दशा की ओर धकेल दिया है। यह स्थायी

और सम्मान-युक्त सन्धि के लिए खुला मार्ग छोड़ देती है। इसके माने हैं आत्मा के देवतुल्य संयम की रक्षा करना।

नुक्ताचींना करनेवाले यह भी कहेंगे कि हम लोग महान् युद्ध मे फंसे हुए हैं। इसलिए देशवासियों मे उत्तम वृत्तियाँ जागृत करने की चेष्टा करने से उनमे दुर्बलता आजायगी, क्योंकि जिस जोश देने वाली हिंसावृत्ति से रण में प्रचण्ड प्रोत्साहन मिलता है, वह न रहेगी; किन्तु जो वृत्ति न रहेगी, वह हमें प्रोत्साहित करने वाली नहीं है। जब भाई-भाई के ही बीच युद्ध छिड जाता है; घरेलू संग्राम ठन जाता है; एक ही कर्तव्य के कई प्रकार के तात्पर्य आपस के लोगो को न्यारा-न्यारा कर देते हैं; पुत्र पिता के विरुद्ध, भाई-भाई के विरुद्ध उठ खड़ा होता है; तब भी उनका झगड़ा एक वंश के होने के कारण अथवा इस कारण कि द्वेष और घृणा को छोड़कर उनके हृदय के भीतर निकट सम्बन्ध का पूरा ज्ञान है ढीला नहीं पड़ता। इसलिए जब तुम मनुष्य को यह शिक्षा देते हो कि उसका शत्रु गहरा विचार करने पर उसका भाई निकल आता है, तो उसे तुम संग्राम से नहीं हटाते, वरन् उसके सामने उसके ध्येय का नया अर्थ रखते हो और उसे एक श्रेष्ठ आदर्श दिखलाकर उत्तेजित करते हो, कि वह अपनी धुन में लगा रहे और लक्ष्य को प्राप्त करे।

६

यदि व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद, संसार में भ्रातृभाव फैलाने के आदर्श के लिए उद्योग करना बाकी रह जाता है, तो हमें इस ध्येय को सांसारिक जीवों की पहुँच के

बाहर न समझना चाहिए। यह आदर्श ध्रुव-तारे के समान हमारा मार्ग-निर्देशक होना चाहिए, जिसे हम भरसक सत्पथ पर चला सकें। हम हाथ मे लिए हुए कार्य क तभी निभा सकते हैं, जब हम इस कार्य को उस उद्देश्य के अनुकूल बनावें, जो हमें उत्साहित करता रहे। इस उच्च उद्देश्य से विचलित करने को हमें कई प्रकार से फुसलाया जायगा, परन्तु जो आत्मिक बल हमारे पक्ष को निर्मल और दृढ़ बनाये रखता है, वह प्रत्येक नष्ट करने वाली शक्ति का प्रतिरोध करेगा। × × ×

जब एक मजहबवाला दूसरे मजहबवाले को अपना भाई समझने लगे, तब यह आदर्श हमें उभाड़ेगा और स्वतंत्रता की पताका हमें अपनी गोद में उठा लेगी। बस समझ लीजिए कि संग्राम का पहला खेत हमने मार लिया। **जब देश के भीतर पूरी एकता स्थापित करने में हम कृतकार्य हो जावेंगे तो स्वतन्त्रता हमारी पहुँच के भीतर आ जायगी।** इसपर समालोचक प्रश्न उठा सकता है कि "भाई, तुम इंग्लैण्ड के साथ मित्रता करने पर क्यों जोर दे रहे हो? वह तो अपना आधिपत्य जमाये रखने की शर्त पर ही सुलह करेगा।" इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि यदि ताली बजाने के लिए दो हाथों की जरूरत पड़ती है, तो क्या इसमें सन्देह है कि मित्रता करने के लिए भी दो हाथ मिलाने की आवश्यकता होती है। हां, यह दूसरी बात है कि कोई गुलाम बनकर अपने हाथों से फरांशी सलाम करने का काम ले। किन्तु इस बात से **हम बेफिक्र हैं। हम दूसरों को बाध्य करके स्वाधी-**

नता ले सकते हैं और हमें अपनी विजय पर पूरा विश्वास है। दोस्ती का रास्ता अब भी खुला है। इस असमंजस से कई लोगों की बुद्धि चक्कर में पड़ जायगी कि एक ओर हमें अपने उदार स्वभाव को जीवित रखना पड़ेगा और दूसरी ओर हमें संग्राम मे कट्टर और दृढ़प्रतिज्ञ रहना पड़ेगा; हमें एक ओर शांति की कामना करनी पड़ेगी और दूसरी ओर पूरी लड़ाई लड़नी होगी; एक ओर हम हृदय में बन्धुता की लालसा रक्खेंगे और दूसरी ओर हानिकर मित्रता को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इंगलैण्ड के साथ साहित्यिक, राजनैतिक, व्यापारिक तथा सामाजिक मेल-जोल बिलकुल तोड़ देना होगा, यदि यह मिलाप स्वाधीनता, समानता और सार्वजातीय स्वतन्त्रता की नींवपर खड़ा न किया जाय। जिस समय हम इस कार्य में जोर से लगे रहेंगे सम्भव है कि लोग इसमें स्थायी मित्रता का आभास न पावें, किन्तु हमे इस चेष्टा मे सदा लगा रहना चाहिए। सब से पहले स्वतन्त्रता की नितान्त आवश्यकता है। हम जब अपने ही पक्ष के सैनिकों में, अपने ध्येय के इस अर्थ का निरन्तर प्रचार करते रहेंगे, तो शत्रु के हृदय में भी यह बात जम जायगी। प्रारम्भ मे हमारे शत्रु इसे भ्रम वा राजनैतिक जाल समझेंगे, किन्तु एक ऐसा भावपूर्ण समय आयेगा, जब उनके हृदयों में हमारा सिद्धान्त प्रकाश फैलावेगा और एक नये युग का आविर्भाव होगा। ऐसे शुभ अवसर पर दुष्टता का लोप हो जाता है, घृणा भस्म हो जाती है और मित्रता नया जन्म लेती है। कुछ लोगों के दिल में यह डर है कि

उनकी आत्म-रक्षा मे बाधा पड जायगी। यह डर तब दूर हो सकता है, जब यह विश्वास हो जाय कि हम को जबरन् गुलाम बनाये रखने की अपेक्षा हमारी आज़ादी से शत्रु की और अधिक रक्षा होगी। इन सन्देह के बादलों को फाड़कर ज्योति की किरणें प्रकाश फैलावेंगी और तेजोमय सूर्य संसार को पुलकित करेगा।

मान-पूर्वक सन्धि करने के लिए हमारे शत्रु का आदर्श भी उतना ही ऊंचा होना चाहिए जितना हमारा। इसके बाद यदि वह किसी प्रकार का विरोध भी करेगा तो न्याय का पक्ष लेकर। किन्तु शत्रु की घोर स्वार्थ-परता और साम्राज्य-लोलुपता, जो कि आजकल उसपर भूत-सी सवार है, यह आशा नहीं दिलाती कि शीघ्र ही वह परमार्थवादी, साधुचरित और उदार बन जायगा।

चाहे कुछ हो, हमें अपने आदर्श को नहीं त्यागना चाहिए। वर्त्तमान इंग्लैण्ड भले ही अपनी पामरता और अत्याचारों के कारण हमारी युक्तियों की उपेक्षा करे और हमारी दलीलों पर पानी फेर दें, किन्तु हमारी आत्मा हमारे कार्यों से गूढ़ सन्तोष प्राप्त करती है।

इतना ही नहीं, हमारे शत्रुओं मे से ही कुछ प्रतिभाशाली आत्मायें चिल्ला उठती हैं और साक्षी देती हैं कि मनुष्य-मात्र एक हैं। वे सिद्ध करते हैं कि बन्धुता का भाव उनके भीतर भी सजग है। यह आदर्श हमें आगे बढ़ाने में उजाले का काम देता

है। इस पथ पर हमे सत्य का अवलम्बन करके चलना चाहिए। शत्रु के चाहे कैसे ही विचार हों, हमे पर्वा न करनी चाहिए। इस कार्य में कठिनता अधिकाधिक क्यों न बढ़ती जाय, किन्तु यह कार्य सफल हो सकता है। राष्ट्रीयता की न्याय्यता तथा इसका गौरव-पूर्ण अर्थ इस भ्रातृत्व के सिद्धान्त में छिपा हुआ है। सारे जगत् को अपना घर समझने वाले लोगों के पक्ष की यह लाजवाब दलील है। जीवन की जो श्रेष्ठता और सुन्दरता सब जातियो का लक्ष्य होना चाहिए, उसे जगत् भर में एक जाति के अतिरिक्त और सब जातियाँ अस्वीकार करें, तो भी वह एक जाति अपने देश के भीतर तबतक उस उद्देश्य को छाती से लगाये रहेगी, जबतक उसका जादू तमाम दुनियां पर न चल जायगा। यद्यपि यह चरम लक्ष्य अभी हम से बहुत दूर है, फिर भी इसका अनुसरण करने में हम को एक-के-बाद-एक पराक्रम के कार्य करने पडेंगे और—

विक्रमपूर्ण कार्यों की सिद्धि में ही हमें सदा सौन्दर्य और आनन्द मिलता रहेगा। वीर लडाके को सर्वदा उचित पुरस्कार मिलता है। उसकी बुद्धि शुद्ध रहती है, खून में जोश रहता है और कल्पनाशक्ति तत्पर रहती है। वह जीवन का अर्थ समझता है, उसे काम करने में आनन्द मिलता है और परिणाम में वह सुख्याति के शिखर पर अपना अधिकार जमा लेता है। इस उच्च चोटी से

कट्टर-से-कट्टर संशयात्मा के कानों में यह सर्वश्रेष्ठ सन्देश गूंजता हुआ आयेगा कि "जब हम आकाश छूने का प्रयत्न करेंगे। तब हम पर्वत-शिखर पर पहुँच सकते हैं।"

पंचम परिच्छेद
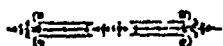
शक्ति का रहस्य

(१)

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हमें समर्थ बनना चाहिए। किन्तु इस सामर्थ्य का भेद क्या है? इसे भली-भांति समझना और समझकर व्यक्तिगत जीवन के आधार पर राष्ट्रीय जीवन की नींव धरना सारे प्रश्न की कुंजी है। अपने अल्पसंख्यक विरोधी लोगों को शारीक शक्ति से दबा देना अबाधित शक्ति का ऐसा पक्का लक्षण माना गया है, कि इस विषय पर सत्य बात को स्पष्ट करने मे धैर्य, सूक्ष्मदृष्टि और कुछ मानसिक अनुशीलन की आवश्यकता है। लेकिन यह काम बड़ा भारी है। हमें अत्यन्त महत्वपूर्ण युद्धक्षेत्र की सूक्ष्म परीक्षा करनी है, शत्रु की प्रकृति का पता चलाना है, अपने साधनो की शक्ति का अन्दाज़ा करना है और तिल-तिल करके तबतक शक्ति संग्रह करते रहना है, जबतक हम अजेयता का अभेद्य कवच न धारण कर लें।

[२]

सच्चे बल के भेद को जानना अत्यन्त आवश्यक है। नीचे लिखी दो प्रकार की लड़नेवाली सेनाओं की तुलना करने से यह बात साफ

मालूम हो सकती है। एक, सुसंगठित सेना, जिसका परिचालन बड़ी योग्यता से हो रहा है और जो आशा और उम्मीद से उछलती हुई आगे बढ़ रही है और दूसरे, नष्ट-भ्रष्ट होने के बाद किसी सेना के थोड़े से बचे-खुचे सैनिक जो कि भग्गी पड़ने पर अपने सहयोद्धाओं के समान भगाये नहीं जा सके, किन्तु जिनकी आत्मा एक ऐसी आशा के साथ जूझ रही है, जिसे सबने निराश होकर छोड़ दिया है। अब हम इन दोनों पर विचार करेंगे, क्योंकि इन दोनों के मिलान से हम रहस्य को समझ सकेंगे। सुसंगठित सेना का साहस उस उच्च कोटि का नहीं है, क्योंकि उसने थोड़े से बचे-खुचे सैनिकों को आखरी दम तक लड़ने के लिए हिम्मत दे रक्खी है।

पहले सुसंगठित सेना को ही लीजिए। उसका बल इसलिए है कि उसने युद्ध-शिक्षा पाई है, उसमें घनी एकता का भाव है, उसके सैनिक अपने अफसरों की आज्ञा का पूर्णतया पालन करते हैं, जिससे सारी पल्टन मे एकता हो जाती है। इन बातों के अतिरिक्त अधिक संख्या में होने के कारण उसे अपने सुरक्षित होने का विश्वास रहता है, दल बनाकर धावा करने में उमङ्ग रहती है और अपने सेनानायकों की योग्यता पर विश्वास रहता है। इन सब बातों से सेना मे साहस और शक्ति रहती है। संगठन से सेना में आत्म-विश्वास बढ़ता है, इसलिए पल्टनों में कड़े-से-कड़ा दण्ड देकर भी क़ायदों की पाबन्दी कराई जाती है।

सेना की शक्ति उसकी संख्याधिक्ता, एकता, परस्पर तथा सरदारों पर निर्भरता मे ही है। जब इस सेना पर अचानक आपत टूट पड़ती है—कोई बड़ा अफ़सर मर जाता है, कोई बद-

वीर ठीक नहीं उतरती है, शत्रु अकस्तमात टूट पड़ता है या कोई और दुर्घटना हो जाती है—तो इसकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है, सेना की व्यवस्था बिगड़ जाती है, सुरक्षित होने का विश्वास जाता रहता है और फौरन तबीयत भागने को करती है। कुछ देर तक कवायद की आदत सेना को सुव्यवस्थित रखती है, किन्तु भय जोर पकड़ना आरम्भ करता है, सब सतर्कता और आत्मसंयम ताक़ पर रख दिया जाता है, पीठ फेरते ही व्यूह भङ्ग हो जाता है, सेना में हड़गाम मच जाता है और परिणाम में पूर्ण पराजय प्राप्त होती है। बाहरी क़वाद ने सैनिकों को बाहरी ताक़त देकर उनकी व्यक्तिगत आत्म-निर्भता खो दी है। आभ्यन्तरिक संयम का ध्यान नहीं रक्खा गया। फलतः जब उनकी सम्मिलित शक्ति नष्ट हो गई तो उनमें व्यक्तिगत विवशता और त्रास फैल गया।

अब आप उन बचे-खुचे सैनिको को लीजिए, जिनमें उच्च श्रेणी-का साहस है, जिनमें प्रत्येक व्यक्ति दृढ़-प्रतिज्ञ है, विरोध करने पर तुला हुआ है और अपने कार्य के प्रत्येक सम्भव परिणामों को फौरन साफ़ देख लेता है, तो भी आत्मा की उन्नत अवस्था के कारण बिना किसी हिच-किचाहट के उन्हें शिरोधार्य करता है। वह सब मानवी आशाओं को पराजय मे से विजय निकाल लानेवाली महान् आशापर न्योछावर कर देता है या यदि वह हारे हुए मैदान को फिर से न भी ले सका, तो भी आगे बढ़ते हुए शत्रु को रोक लेता है, बिखरे हुए सैनिकों को फिर से बटोरता है और युद्ध का कलंक धोता है। यह वीरोचित गुण है। जिसमे यह गुण होता है, वह संक समय आज्ञाओ की अपेक्षा नहीं करता और न परिणाम पर ही विचार करता है। उसके विचार फ़ौरन निर्णय

कर देते हैं और वह निश्चित या सामने रक्खी हुई पाता है। तीन-तेरह होते हुए सैनिक, गिरे हुए झण्डे और विजयी सेना तथा खेत छोड़ना या मृत्यु का आलिङ्गन सब ही देखते हैं, किन्तु बहादुर सिपाहियों को भागने और मरने में भी आशा और विजय की रेखा दिखाई देती है और इस नष्ट आशा के लिए भागना एक किनारे कर दिया जाता है और हार होने पर मौत का आलिङ्गन किया जाता है। यह गुण है जो हमारा कलङ्क धो देता है। चूंकि हमारे इतिहास में यह गुण बहुधा देखने मे आता है। इसलिए हमारी विजय अवश्य होगी।

हम इसलिए विजय प्राप्त नहीं करेंगे कि हमने बरावरी के मैदान में जवांमर्दी दिखाई है, हम इसलिए विजय प्राप्त नहीं करेंगे कि हमारे देशवासियों ने देशदेशान्तरां में जाकर शत्रुओं के दांत खट्टे किये हैं; परन्तु हम विजय प्राप्त करेंगे वीर-प्रसविनी जन्मभूमि के उन पवित्र स्थानों की याद करके जो हमारे उन संग्रामों के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे, जिन्होंने इस जन्मभूमि का नाम संसार को अजेय जातियों की सूची में अङ्कित कर दिया है।

संसार के लिए यह रहस्य अभी छिपा ही रह गया है कि आखिरी दम की जी-तोड़ लड़ाई और जीवनदान, जाति में महान् से-महान् विजय से भी अधिक नई जान क्यों डाल देता है। संसार न

जाने, पर यह बात सत्य है। क्योंकि ऐसे सत्य के सैनिकों का ध्यान करने से ही हमारी आत्मा जगमगा उठती है, हमारा उत्साह फिर से जाग उठता है और हम आने वाले संग्राम के लिए कमर कसकर तैयार होते हैं।

(३)

हमें व्यक्तिगत धैर्य, साहस और दृढ़ता प्राप्त करनी चाहिए। यह बात ध्यान में आते ही हमारा काम आरम्भ हो जाता है। कुछ लोगों में यह आशंका जनक विचार फैला हुआ है कि भविष्य में कभी-न-कभी हमें स्वतंत्रता के युद्ध मे कूदना ही पड़ेगा। किन्तु इस बीच हमें उस समय की बाट जोहते हुए हाथ-पर-हाथ धर-कर बैठे रहना चाहिए। यह सर्वनाशी भूल है। इस अर्से में हमें अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए। हम एक गलती और भी करते हैं। हम राष्ट्रीय कार्य को और कार्यों से अलग समझते हैं, हम यह समझते हैं कि सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक तथा अन्य विषयों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। फल यह होता है कि हम अवकाश का कुछ समय राष्ट्रीय-काम के लिए रख छोड़ते हैं और सारा दिन इस प्रकार बिताते हैं मानो हमारा कोई राष्ट्र ही नहीं है। किन्तु प्रत्येक काल का सम्बन्ध भूत तथा भविष्य से होता है, इसलिए चाहे मनुष्य कोई काम क्यों न करता हो वह काम दूसरे कामो के अनुकूल होना चाहिए, उनमे विच्छिन्न नहीं।

उत्तम देशभक्त और सैनिक वही बन सकता है, जो उत्तम मित्र तथा उत्तम नागरिक हो। यह नहीं हो सकता कि कोई आदमी एक दायरे में ईमान-दार रहे और दूसरे में बेईमान बन जाय। चूंकि

एक नागरिक को अपने देश के प्रति कर्तव्य-पालन करने के लिए सच्चरित्र और पूर्ण उत्साही होना चाहिए, इसलिए उसे अपने भीतर सोये हुए गुणों का अपने नित्य के जीवन में उत्कर्ष करना चाहिए। उसे अपना चरित्र मजबूत बनाना चाहिए और ऐसा करने के लिए उसे कई ऐसी बातों से सम्बन्ध रखना पड़ेगा जो राष्ट्रीय दृष्टि से अनावश्यक और महत्वहीन सी प्रतीत होती हैं। अपनी दिनचर्या में मनुष्य के सामने न्यूनाधिक महत्व के जो काम आ पड़ते हैं उनके प्रति उसका कोई-न-कोई भाव अवश्य होता है। जान या अनजान में यह भाव जिस प्रकार सधेंगे उससे पता चलेगा कि आंखों से ओझल दूसरे क्षेत्रों में वह किस ढंग से कार्य करेगा। व्यापारी तथा सामाजिक जीवन में पड़े हुए किसी मनुष्य का उदाहरण लीजिए। उसे अपने कार्य-क्रम में दूसरों से मिलकर काम करना पड़ता है और अवकाश के समय आमोद-प्रमोद भी दूसरो के साथ मिलकर करना पड़ता है। सब लोग यह जानते हैं कि किन लोगों के साथ वह अपना काम करता है और किस ढंग के वार्तालाप मे उसका आमोद का समय कटता है। मनुष्य को हर रोज दूसरों से मिलकर कार्य करना पड़ता है। इसलिए आवश्यक है कि उनमें स्नेहभाव (मन-मिलाव) हो; तो भी नगण्य छोटी छोटी बातों पर कई रोज़ तक जूतीपैजार, लड़ाई झगडा, राग-द्वेष देखने मे आता है। हम देखते हैं कि दो आदमी कुत्ते-बिल्लियो की तरह तुच्छ-से-तुच्छ बातों पर लड़ते-झगड़ते हैं और फिर कई दिन तक नादान बच्चों की तरह बोलना तक बन्द कर देते हैं। सामाजिक-जीवन में भी नर-नारियों में यह दुर्गुण देखे जाते हैं—नीच डाह, व्यक्तिगत आक्षेप, निन्दा करना और

ऐसी क्षुद्र कहानियां गढ़ना जो स्वयं कुछ मूल्य नही रखतीं किन्तु उल्टा यह दिखलाती हैं कि गढ़नेवाला मनुष्य और उसकी कही हुई बातें कैसी हीन और घृणित हैं। निर्मल बुद्धिवाला मनुष्य विशुद्ध मनुष्यता का, सब मनुष्यों में भलमनसाहत के भाव का, झगड़े को मुस्कराकर उड़ा देनेवाली उदार दृष्टि का और उस ज्ञान का अभाव देखकर निराश होता है; जिसके होनेसे सिद्धान्त के लिए लड़े जाने वाले महायुद्ध में दृढ़ता की आवश्यकता समझ कर थोड़ी देर तक रहने वाली छोटी-मोटी बातें हार्दिक घृणा से देखी जाती हैं। क्योंकि इन नीचता-पूर्ण और छोटे-छोटे झगड़ो में कोई सिद्धान्त नहीं वल्कि दम्भ की गन्ध छिपी हुई है; इसलिए स्वतंत्रता के सैनिक को इन बातो का विचार रखकर अपनी कार्य-शैली निश्चित करनी पड़ती है। बाहर से यह प्रतीत होता है कि ठीक काम करना हमारे लिए स्वाभाविक और सरल है किन्तु व्यवहार मे यह देखने मे नही आता। मनुष्य जब देखता है कि उसके साथ अशिष्टता तथा उद्दण्डता का व्यवहार किया जा रहा है तो फ़ौरन उसकी क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, बखेड़ा खड़ा हो जाता है और अन्त में मालूम होता है कि न तो उसका काम ही बना और न बिना झगड़े उसके किसी सिद्धान्त का हनन हो रहा था। वह व्यर्थ हो आपे से बाहर हुआ। कई लोग जोश में आकर कह बैठते हैं कि हम इस विषय पर बहस न करेंगे किन्तु यदि उन्हें अदना-से-अदना आदमी भी बीच बाज़ार मे छेड दे तो वे झगड़ा करने का तैयार हो जाते हैं। × × × ×

हम लोगो में छोटी-बड़ी बातों का मूल्य जाँचने की शक्ति होनी चाहिए जिससे हम निर्लज्जता के छोटे-छोटे अपराधों को

इतना बड़ा न बनावें कि उन्हें जीवन-मरण का प्रश्न समझ कर लड़ मरें। छोटे-छोटे अपराध या तो दिल्लगी में उड़ा दिये जाने चाहिएँ या उनके ऊपर ध्यान ही न दिया जाना चाहिए, किन्तु साथ ही उन संकीर्णहृदय मनुष्यों से जिनके विचार इन छोटी छोटी बातों के आगे नहीं पहुँचते हमारी सहानुभूति रहनी चाहिए। हां, ऐसा कर दिखलाना सहज नहीं है। क्रोधी स्वभाववाले पुरुष को बुद्धि से काम लेने के पहले ही गुस्सा आ जाता है। अपने को सुधारना उसको कठिन मालूम होगा। बुद्धि होने पर भी चित्त वृत्तियाँ पहले ही विद्रोह मचा देती हैं, तो भी धीरे-धीरे ये वृत्तियाँ वश में की जा सकती हैं और अन्त में जल्दी गुस्सा हो जाने की गंदी आदत बदल सकती है और समय पाकर ऐसा हो जाता है कि जो बात पहले मनुष्य की क्रोधाग्नि को भड़काने वाली थी आज वह प्रमोद का विषय बन जाती है। इससे कोई यह आशंका न करे कि महान् जीवन-संग्राम का मूल ही मारा जा रहा है बल्कि इससे हममें मजबूती आ जाती है और हम पक्के बनते हैं। हमारे आत्मसंयम का प्रत्येक कार्य ज्ञान के उस गुप्त भंडार को भर रहा है जहाँ से हमारी श्रेष्ठ शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार छोटी बातें बड़ी बातों तक पहुँचाती हैं। पद के तथा सामाजिक झगड़े बखेड़े के विषय में बुद्धि, उत्साह तथा धैर्य को इतना बढ़ाना चाहिए कि वे रणक्षेत्र वा राजकाज में संकट-पूर्ण समय के लिए सब साधनों से तैयार रहें।

(४)

हमने मनुष्य के व्यावहारिक तथा सामाजिक जीवन पर विचार कर लिया है। अब हम इसी प्रकार उसके राजनैतिक

जीवन पर विचार करेंगे। यहाँ भी वही हालत है। यहाँ भी मनुष्य बहुधा तुच्छ-से-तुच्छ विषयो पर बुरी तरह लड़ते हैं। जिनकी बुद्धि स्वच्छ है वे स्थिति को देखकर प्रतिज्ञा करेंगे कि वे इस बखेड़े मे नही पड़ेंगे, भले ही उनके शम और दम को लोग भला बुरा कहें। राजनैतिक सभा में सबसे पहले प्रायः कौनसी बात आती है? हम आरम्भ मे ही यह बात मान लेते हैं कि यह यथार्थ मे कार्य करने वालों का संघ है। हमारा यह मत सदैव किसी ऐसे उत्तम सिद्धान्त को टाल देने के दोष को छिपाने के काम आता है जिसकी हमे गले लगाकर रक्षा करनी चाहिए। किन्तु हम करते क्या हैं? पहले तो हम लोगो को पसन्द आने वाले कई झूठे किन्तु सत्य-से भासमान होने वाले कारण दिखाकर सिद्धान्त को एक किनारे कर देते हैं। बस, फिर ऐसी बातो के लिए एक दूसरे को काट खाने को दौड़ते हैं जिनका सिद्धान्त से कुछ सम्बन्ध नहीं है। इसका विशेष उदाहरण देना व्यर्थ है। इस दशा का पता चलाने के लिए किसी सभा को आप देख लीजिए। सभापति स्वयं डावाँडोल रहता है, दूसरो को क़ायदा बतलाता है और अपने मे इतना चरित्र-बल नहीं है कि स्वयं उन नियमों का पालन कर सके। सभासद अध्यक्ष की पर्वा नही करते और आपस में गप–शप लड़ाने लगते हैं। कुछ लोग 'शांति शांति' चिल्लाते हैं, असामयिक बातें बकते हैं वा बेतुकी हाँकने लगते हैं। कोई समय-समय पर यह पूछ उठता है कि सभा मे किस विपय पर वाद-विवाद हो रहा है या सभा का क्या उद्देश्य है, जिससे सिद्ध हो जाता है कि अब तक सारा काम निरर्थक हुआ। इस दृश्य से सभी परिचित हैं। आश्चर्य की बात यह

है कि हम समझते हैं कि किसी विशेष स्थान या समय के लोगों की यह विशेष चपलता है, किन्तु बात यह नहीं है। सिद्धान्तों को ताक पर रखने का यह स्वाभाविक और न्यायसंगत परिणाम है। फिर भी हम प्रतिदिन ऐसा ही कर रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि हममे मिलकर किसी बात पर उसके सहज परिणाम तक लगे रहने का साहस नहीं है और सच्चे परिणाम तक पहुँचने पर उसके लिए लड़ने की हिम्मत नहीं रहती।

यदि हम अपनी इस त्रुटि को दूर करना चाहते हैं तो यह विस्तृत और महान् कार्य आत्म-संयम सीखने से ही हो सकता है। जो महान् कार्य हमने ले रक्खा है हमें उसकी व्यापकता और महिमा ठीक-ठीक समझनी चाहिए और अपने को उसकी सेवा के योग्य बनाने के लिए हमें अपना चरित्र ऐसा बनाना चाहिए कि कोई उसमे धब्बा न लगा सके। छोटी-छोटी बातो और कपटी व्यवहार का अन्त कर देना चाहिए और हमें वीरहृदय, दृढ़प्रतिज्ञ और उदाराशय होना चाहिए। हममे से प्रत्येक को यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए और इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि परीक्षा के समय प्रत्येक दृढ़ सिद्ध हो। सार बात यह है कि यदि घरेलू जीवन मे उन गुणों का विकास करने की आवश्यकता है जो सार्वजनिक जीवन में काम आते हैं, तो सार्वजनिक जीवन में और भी अधिक आवश्यक है कि सैनिक तथा राजनीतिज्ञों के उपयुक्त उत्साह, धैर्य और बुद्धिमत्ता बढ़ाई जाय।

[५]

तात्त्विक तर्क–वितर्क की अपेक्षा एक साधारण उदाहरण

इस विषय को स्पष्टतया हमारे दिलों पर जमा देगा। हमारे प्राचीन और नवीन इतिहास में हमारे नेताओं के अपने ऐसे सिद्धान्त त्यागने के कई उदाहरण मिलते है जिनकी रक्षा के लिए वे राजनैतिक अखाडे में कूदे थे। ऐसे अवसरो पर हम लोग नित्य एक ही बात करते हैं अर्थात् हम ऐसे अपराधी को निरा विश्वासघाती मानते है, उस पर निन्दा की बौछार करते हैं, जीवन भर उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उसके माथे-पर सदाके लिए कलंक का टीका लगा देते हैं। हम कभी यह नहीं देख पाते कि दोष उसके स्वभाव का नहीं किन्तु उस दुर्बलता का है जिसे मिटाने के लिए उसे शिक्षा नही मिली और न आत्म-संयम का ही अभ्यास कराया गया; अतः पहले ही संकट मे वह अपने को असहाय पाता है। हाल ही में इङ्गलैण्ड के राज्याभिषेकोत्सव के समय अपने कुछ मेयरो तथा लार्ड मेयरो की करतूत से आयर्लैण्ड क्रोध में पागल हो उठा था। हमारी राजधानी में इस क्रोध ने भीषण रूप धारण कर लिया था। कई बातें मोटी नजर से भी देखी जा सकती हैं, किन्तु कितने आदमी यह जानने की चेष्टा करते हैं कि भीतरी रहस्य क्या है। अब मैं एक घटना को लेकर बतलाऊंगा कि बात क्या है? घटना जितनी अधिक चुभती हुई होगी उतनी ही सरस मालूम पड़ेगी। मान लीजिए कि एक पुराना फीनियन (विप्लववादी) मेयर चुना गया है। अब आप देखते चलिए, उसके लिए किस कौशल से जाल फैलाया जाता है और अन्त में कितनी मजबूती से वह फँसाया जाता है। मेयर मजिस्ट्रेट होता है, उसे नियमानुसार राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ती है, किन्तु इस पुराने फीनियन ने स्वतंत्र आयर्लैंड को भक्ति

की शपथ खायी है। सिद्धान्त के खण्डन का यहां से श्रीगणेश हुआ। अब और बातें सुनिए। कोई नेता जब किसी उच्च पद पर पहुँचता है तो स्वार्थी लोगो का एक समूह, तंग हालत में पड़े हुए उसके मित्र, पराधिकार चर्चा में आनन्द लेने वाले राजनीतिज्ञ और उसके हिमायती उसे चारों ओर से घेर लेते हैं। मेयर का अदालत में प्रभाव होता है जिसका वे लोग समय-समय पर लाभ उठाना चाहते हैं और इसलिए वे उसे मेयर के पदपर रखना चाहते हैं। वे ऐसे सिद्धान्त को भला नहीं समझने जो उनके हित में बाधक होता है। वे सब मिलकर उसके पिट्ठू बनते हैं और इस बात को लेकर कि उन्होंने उसे सार्वजनिक जीवन में पद दिलाया है, ऐसा आचरण करते हैं मानो उन्होंने उसकी आत्मा को मोल ले लिया है। मेयर को बहुधा वही करना होता है जिसे वे लोग उपयोगी समझते हैं, न कि जिसे मेयर उचित समझता है। बस, जिस रोज़ मेयर बने उसी रोज से सिद्धान्त की लड़ाई आरम्भ हो जाती है। जो हो, इस वृद्ध फीनियन में पूर्वकाल का यथेष्ट तेज शेष है कि वह इस पहली लड़ाई में बच-कर निकल आया। तुरंत दूसरी परख सामने आ खड़ी होती है। इस बीच 'डबलिन-कैसल' के अधिकारियों की तीव्र दृष्टि उस पर गड़ी रहती है। मेयर को चीफ मजिस्ट्रेट की हैसियत से कई विशेष अधिकार मिले रहते हैं। कैसल से इनके छीने जाने की घुड़की मिलती है। अधिकारी लोग निजी तौर पर घुमा-फिराकर शिकायत करते हैं कि "मेयर गैरक़ानूनी काम कर रहा है; उसे अमुक-अमुक काम न करने चाहिएँ; मजिस्ट्रेट का कर्तव्य अमुक है; उसने राजभक्ति की शपथ नहीं ली है" इत्यादि। फिर वही पुरानी

लड़ाई शुरू हो जाती है क्योंकि डब्लिन कैसल के अधिकारी चाहते हैं कि अदालत में मेयर उनका होकर रहे और अपने पुराने दल से बिछुड़ जाय। मेयर के विशेष अधिकारों को रद्द करके उस पर दबाव डाला जाता है। इससे उसका प्रभाव घट जाता है और उसके सहायक हताश हो जाते हैं। यह सब बातें चुपके से की जाती हैं। मेयर फिर भी सिद्धान्तों पर डटा रहता है, किन्तु उसने इतना अधिक अन्देशा नहीं किया था इसलिए वह चक्कर में पड़ने लगता है और हैरान हो जाता है। अब उस पर कई ओर से आकस्मिक आक्रमण होने आरम्भ होते हैं। सम्राट् ने भोज दिया है, मेयर के पास निमन्त्रण पहुँचता है, आयर्लैंड में ही आमोद-प्रमोद व उत्सव होते हैं, निमन्त्रण आ पहुँचता है, खेल-कूद, नाच-तमाशों में भाग लेने के लिए इङ्गलैण्ड जाने का राह-खर्च मिल जाता है; मेयर सब जगह बेरोक-टोक जा सकता है, उसे पथ भी दिखला दिया जाता है और मेयर तथा उसकी धर्मपत्नी से उपस्थित होने के लिए नम्र निवेदन किया जाता है। अपने ही काम-काज से अवकाश न मिलने के कारण लाज रह जाती है और निमन्त्रण टाल दिये जाते हैं, पर हमारे नागरिक-शिरोमणि की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। चारो तरफ से इन सामाजिक निमन्त्रणरूपी बाणों की वर्षा हो रही है। यह निमन्त्रण नम्र व मधुर भाषा में लिखे रहते हैं, इनमे अशिष्टता व उद्धतता का नाम नहीं रहता। ऐसे निमन्त्रणों को भला कौन अस्वीकार कर सकता है? अक्ल हैरान होती जाती है लेकिन मेयर अभी तक फन्दे में नहीं फँसता। नया वार किया जाता है। स्वास्थ्य-रक्षिणी सभा का अधिवेशन होता है, स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे तो

परमात्मा के प्यारे अंग्रेज और जंगली आयरिश, फीनियन और उच्च राजकर्मचारी, मजदूर और मालिक किसी में मत-भेद नहीं है। हम सब निश्चय ही रोगाणुओ के शत्रु हैं। बड़ा भारी जलसा होता है, गवर्नर सपत्नीक पधारते हैं और मेयर को सभापति का आसन दिया जाता है। आखिरकार रोगाणुओ के मायाजाल में वह फँसा लिया जाता है। जिस सभा की शोभा लाट साहब और लेडी साहबा बढ़ाती हैं वह वास्तव मे बड़ा भारी मौका है। लाट साहब मेयर के साथ बड़ी मीठी-मीठी बातें करते हैं और लेडी साहबा के साथ मेयर की धर्मपत्नी की ख़ूब घुटती है। इनमें ऐसा गाढ़ परिचय मालूम होता है मानों इन्होंने एक ही कसबे के एक ही स्कूल में साथ-साथ पढ़ा हो। हर बात में प्रशंसा की झड़ी लग जाती है और जय-जयकार के साथ सभा समाप्त होती है। गवर्नर और लेडी साहबा सभा से जाती हैं। इस राजनैतिक युद्ध की बलिहारी है। कैसी शान्ति के साथ घाघ राजनीतिज्ञों की तोपो के मुँह पर कील ठोक दी जाती है और वे राजनीति से पृथक् कर दिये जाते हैं! शिष्टाचार यह सब करवाता है। गवर्नर सपत्नीक चले गये किन्तु वह बात भूले नहीं। घर जाकर इस आवभगत के लिए धन्यवाद का पत्र भेजा जाता है। मेयर के सुख-दु.ख के समय उसकी याद की जाती है और समय पर हार्दिक बधाई या गाढ़ समवेदना के पत्र बड़ी-बड़ी सरकारी मुहरों के भीतर बन्द करके भेजे जाते हैं। ऐसा कौन असभ्य होगा जो समवेदना पर रोष प्रकट करे?

इस प्रकार कट्टर लड़ाके की शक्ति जड़ से उखाड़ दी जाती है। जाल बड़ी सुन्दरता से बिछाया गया और राजकर्मचारियों ने

इसके फन्दों में अपना आदमी जकड़ लिया। जिसने डबलिन में मेयर की इन करतूतों को ध्यान से देखा है, उसे यह बात खटकी होगी, इसलिए नहीं कि किसी मनुष्य के आत्मसमर्पण की हँसी उड़ाई जाय, बल्कि इसलिए कि उसने इसका वास्तविक अर्थ, भीतरी रहस्य और इससे उत्पन्न होने वाली हानि को देख लिया है। जो कोई कर्तव्य से च्युत होता है उससे कैफियत तलब की जानी चाहिए। जब कोई मनुष्य किसी विश्वास, प्रभाव तथा सम्मान के पद को ग्रहण करता है, चाहे कुछ हो यदि वह अपने उस सिद्धान्त से विमुख होता है जिसकी उसे धर्म के समान रक्षा करनी चाहिए थी तो इसके लिए वह उत्तरदायी है। युद्ध कसौटी है इसलिए हमें शत्रु और मित्र दोनों के साथ समान दृढ़ता से व्यवहार करना चाहिए। लेकिन एक पदार्थ मनुष्य की दुर्बलता से भी अधिक दुष्ट है। वह यह फन्दा है जिसका हमें सदा स्मरण रहना चाहिए।

[६]

इस मोटे उदाहरण ने हमारे विवादास्पद सिद्धान्त को भली भाँति समझा दिया। जिस मेयर का हमने सरासर अधःपतन देखा है वह अटल रहता यदि उसके लिए इस प्रकार जाल न फैलाया जाता। उसे कभी यह ध्यान भी न आया होगा कि उसे इस षड्यन्त्र का सामना करना पड़ेगा। कभी ख़त्म न होने वाली ये सीधी और टेढ़ी घुड़कियाँ, ये फुसलाने की बातें, यह भुलावा, यह कृपादृष्टि, यह उपकार, यह चापलूसी, यह दिखाऊ उदारता, यह कुटिल और कपटी आक्रमण, न मालूम कहाँ से निकलते हैं। जो इन बातों के विरुद्ध दृढ़ रहना चाहता है और

घुड़की या चापलूसी से ऊपर उठना चाहता है, उसे उस आत्म-संयम में अभ्यस्त हो जाना चाहिए जो उसे प्रत्येक सकट मे पार होना सिखलाता है। मौका पड़ने पर हम कपडो की तरह उचित चरित्र ग्रहण नहीं कर सकते। चरित्र घरेलू या सार्वजनिक प्रत्येक ऐसे कामों से पुष्ट होता है जिनमे मनुष्य के भाव गठित होते हैं, उसके हृदय में विश्वास अंकित होते हैं और चित्त का निर्माण होता है। दृढ़ चरित्र उस रोज़ भी स्वयं अपना पारितोषिक प्राप्त कर लेता है, जिस दिन हमारी किसी प्रकार की बाज़ी नहीं लगी होती है; किन्तु मनुष्य जीवन की तुच्छ-तुच्छ बातो पर गुस्से से पागल होकर लड़ते-झगड़ते हैं; क्योंकि जो जीवन की इन तुच्छ बातो का ठीक मोल जानता है वह कभी नहीं घबराता। चारों ओर क्रोध रहने पर उसका यह सयम अनमोल है। जिस चित्त ने उसे आपे में रख रक्खा था वह तुच्छ बातों को अपने ध्यान से बाहर निकालने के कारण ही जीवन की उत्तम बातें स्पष्टतया समझ लेता है। उसकी आत्मा उससे कह देती है कि इन बातों से व्यक्ति और राष्ट्र के अस्तित्व को दारुण धक्का पहुचेगा। साधारण आँखें यह संकट नहीं ताड़ सकतीं। ऐसे अवसर पर शत्रु चक्कर में पड़ जाता है और चरित्रवान् पुरुष निष्कपट, महा-शक्तिशाली और प्रखर बुद्धिवाला सिद्ध हो जाता है।

इस महान् उद्देश्य के लिए हमे शक्ति का रहस्य भली भाँति समझ लेना चाहिये। फौज के साथ वीरता से संग्राम मे जाने के लिए कमर कसे हुए रहने में इसका भेद नहीं है। इसके लिए जिस नियंत्रण की आवश्यकता है वही उत्तम और बहुमूल्य है। उसका भी अभ्यास और पालन किया जाना चाहिए। ले

इससे जनसमूह का साधारण साहस सीखा जाता है। इस पर उसी युद्धक्षेत्र मे निर्भर रहा जा सकता है जो बराबरी का हो तथा जिसमें हार-जीत की दोनों ओर समान सम्भावना हो। परन्तु जब स्वाधीनता को फिर से स्थापित करने के लिए उद्योग किया जाता है, जब युद्ध के ढंग से ही दोनों पक्षों मे जीत हार की सम्भावना बराबर नहीं है और स्वतन्त्रता के सैनिको को प्रत्येक प्रकार की असुविधा है, तब हमे इस कमी को पूरा करने के लिए अधिक विशुद्ध साहस और अधिक टिकाऊ शक्ति का संग्रह करना चाहिए। असंख्य जनता को अपने साथ लेने से काम न बनेगा। उस सेनापति को, जो साधारण सैनिकों की इन सुन्दर कतारों को जाँच कर रहा है और उस शक्ति का अनुमान करना चाहता है जिसे वह परिचालित करेगा, ध्यानपूर्वक इन सैनिकों की परीक्षा करनी चाहिए जिससे पता चल जाय कि इस बहादुर पल्टन से एक टुकड़ी बनाने के लिए कितने ऐसे आदमी मिल सकते हैं जो जीत की आशा बिसर जाने पर भी युद्धक्षेत्र मे डटे रहेंगे। यदि आवश्यकता के समय प्रयोग करने के लिए यह शक्ति संचित रक्खी हुई है, तो वह प्रत्येक संकट का सामना कर सकता है। यदि दोनो दलों का बल समान है तो उसकी अद्भुत विजय हो सकती है और यदि लड़ाई के किसी दाव-पेंच से उसकी सेना की रचना बिगड़ जाय और सर्वनाश सामने हो, तो भी उसे बिखरे हुए सैनिकों को एकत्रित करके फिर व्यूह रचने और युद्ध में फिर से विजय प्राप्त करने की कुछ आशा बनी रहती है। उसे आशा रहती है कि जिस झंडे ने इतने उलट-पुलट देखे हैं वह अन्त में स्वतन्त्रता के प्रकाश में ऊंचा किया जायगा।

षष्ठ परिच्छेद
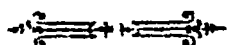
आचार व्यवहार में सिद्धान्त।

(१)

स्वतन्त्रता पर हमारे ये सब विचार बेकाम हैं यदि हम जीवन में इनका उपयोग नहीं करते। हम बहुत सूक्ष्म बुद्धि से नये-नये सिद्धान्त क्यों न निकालते जायँ, किन्तु यदि हम अपनी दिन-चर्या में उनका उपयोग करके उनकी जाँच पड़ताल न करें तो हम दर्शनशास्त्र के इतिहास में इधर उधर बिखरे हुए निकम्मे सिद्धान्तों की संख्या-मात्र बढ़ाते हैं।

इस ग्रन्थ में जो सिद्धान्त भरे रक्खे हैं वे तर्क-वितर्क के लिए नहीं पुस्तक लिखने के लिए नहीं अथवा सभायें करने के लिए नहीं किन्तु मुख्यतः हमारे लिए जीवन के नियम निर्धारित करने के लिए हैं। इस बात को भूल जाना अपने समय और शक्ति को बर्बाद करना है। इन नियमों का पालन और अनुसरण करना इनको अपने जीवन का अँग बना लेना है। इन नियमों के अनुसार चलना

हमारे सम्मुख आने वाली समस्याओं का उचित समाधान करना है। इनको मानने से दो विरोधी विधानो में हम अपने पसन्द का नियम छाँट सकते हैं। चारो ओर से विरोध होने पर भी और रास्य-समय पर होनेवाली निराश को हटाते हुए सत्य के प्रति विश्वास अटल रख सकते हैं। हम इसकी सत्यता से लोगों को अचरज मे डाल देंगे और लोग इसके भक्त या विरोधी चाहे जो बनें किन्तु हमारी पीढ़ी के हृदय में यह धाक जम जायगी कि हमने गुरु भार उठा रक्खा है।

[२]

अपने सिद्धान्तो को काम में लाने के पहले हम अपनी स्थिति फिरसे देखेंगे। प्रत्येक देश मे कुछ समय विशेष जागृति के होते हैं। हमारे आयलैंड के इतिहास में भी कुछ वर्ष ऐसे हैं जो बतलाते हैं कि स्वतन्त्रता के सैनिकों ने महान् सिद्धान्त ग्रहण किया था; वे सब प्रकार के बलिदान के लिए तैयार हो गये थे, उन्हें सत्य, पराक्रम, स्वतन्त्रता और अवश्य विजयी होने वाली पताका-पर अचल विश्वास था इन वर्षों मे जनता के आगे एक आदर्श था, खून जोर मार रहा था, देशवासियो के हृदय मे तेज आग सुलग रही थी जिसमें पाखंड, छल तथा नीचता झुलस गये थे और उच्च आकांक्षा से और महान् कार्य करने के लिए वीर हृदय प्रदीप्त हो उठे थे; क्योंकि सर खुजलाते हुए भीखने व घिघियाने-वालो के रहते हुए भी शत्रु को ललकारना व उसकी शक्ति को डिगा देना पराक्रम है,चाहे उसे देश से निकालने मे अभी बिलम्ब ही क्यो न हो। इन तेजस्वी वर्षों के बाद फिर एकबार निराशा का अन्धकार छा गया। इस समय भी वीर हृदय इधर-

उधर बिखरे हुए लेकिन मौजूद थे। उनमें विश्वास बना हुआ था परन्तु उनमें संगठन नहीं था और वे गड़बड़ में पड़े हुए थे। नेता पछाड़ दिये गये थे और उनकी जगह पर जीवन की सुन्दरता, भूत-काल की महिमा और भावी आशा को धुंधला करनेवाले, मौका मिलने पर अपना मतलब गांठनेवाले, खुशामदी, पाखण्डी तथा सार्वजनिक शील और सम्मान को बेचकर खाने वाले, मातृ-भूमि पर अपना कलंकित अधिकार जमाने लगे। इतिहास के निरीक्षण से यह चढ़ाव-उतार दिखाई देता है। एक पीढ़ी तेज से चमकती है और दूसरी पीढ़ी निराशा में डूब जाती है। यह निर्णय करना हमारे हाथ में है क्योंकि हम ही इसका फैसला कर सकते हैं कि हम अपने समय को व्यर्थ खोयेंगे अथवा अपनी जाति के उज्ज्वल इतिहास में एक ज्योतिर्मय अध्याय और जोड़ जायँगे।

[२]

इनसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए हमें इन दो युगों की विशेषताओं को समझना चाहिए। पहले उस आदर्शपूर्ण समय को लीजिए जब देश में स्वतन्त्रता के झंडे को फिरसे फहराने का उद्योग होता है। जब पहले-पहल उत्साह मे मत्त सैनिक अपने हृदय की जलती हुई आग को, फड़कती हुई आशा को और हृदय पर अंकित हो जाने वाले आदर्श को सर्वत्र फैलाता है, तो उसके साथ-साथ देश मे ध्येय की श्रेष्ठता, सार्वजनिक धर्म, अपना चरित्र अधिक-अच्छा बनाने के लिए व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, कार्य में अधिक स्थिरता और हृदय की स्वच्छता के ज्ञान की जागृति होती है। इससे क्रमश हीनता, छल, प्रपञ्च और

विश्वासघात जाति तथा राष्ट्र के हृदय से उखड़ जाते हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता का उद्धार करने का दृश्य हमारी आंखों के सामने नाचने लगता है और इस प्रबल आकांक्षा और उत्साह के साथ-साथ दृढ़-प्रतिज्ञा और दृढ़-बल का मेल रहता है। उत्तम भाव हमें महान् युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। यह युद्ध किया जाता है और हमारा दुर्भाग्य होने पर भी यह युद्ध महान ही बताया जायगा। हमारे इस स्वप्न को चाहे जो घटना-समूह मलियामेट करदे और हमारी विजय मे कुछ काल के लिए बाधा डाल दे, तो भी यह उज्ज्वल कार्य हमारे आदर्श की साक्षी देने, सैनिकों की न्याय्यता सिद्ध करने और अन्तिम सफलता की आशा दिलाने के लिए मशाल का काम दे रहे हैं।

[४]

अब हम स्वतंत्रता के युद्ध के बीच-बीच में मुर्दनी फैलानेवाले जो साल आते हैं उनपर विचार करेंगे। ऐसा समय हम लोगों में अधिकांश लोगों ने स्वयं देख रक्खा है। इस विषय पर हम कुछ लिख भी चुके हैं और उन आचार-भ्रष्ट करने वाली बातों का विस्तृत विवरण नहीं देना चाहते हैं जो हमें कलुषित और निराश करती हैं। हमे इस स्थानपर उन मनुष्यों के उद्योग या कहिये निरुद्योग का विचार करना है जिनका स्वतन्त्रता पर पक्का विश्वास है और जो समय-समय पर इधर या उधर काम करने के लिए अपने को बाध्य-सा पाते हैं। उन्होने युद्ध की हार देखी है और उस हार के परिणाम-स्वरूप वे सुन्न-से हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य तत्कालीन अधिकारियो को आत्मसमर्पण करना अस्वीकार करते हैं किन्तु उनमें उस समय का दृढ़ विश्वास और उत्साह

नहीं है जब कि प्रत्येक बातपर ये अधिकारी ललकारे गये थे और उनका बनना व बिगड़ना इसीपर निर्भर था । ये आदमी बहुत समय तक उदासीन बने रहते हैं किन्तु जब विशेष नीचता या विश्वासघात का काम देखते हैं तो एकाएक उन्हें गुस्सा हो आता है और सहसा वह काम करने को दौड़ पडते हैं । फल कुछ नहीं होता और वे फिर अपनी निस्सहाय अवस्था में लौट जाते हैं । उनमें जोर-शोर के आन्दोलन के समय के वे उच्च भाव नहीं हैं जो प्रतिक्षण उत्तेजित करते रहते हैं, निश्चित पथ बताते हैं और लडाई के लिए निरन्तर जोश उभाड़ते रहते हैं। ऐसे मुर्दादिल चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं कि यह युग किसी काम का नहीं है, शत्रु की तूती बोल रही है, वह अपने आसन से उतारा नहीं जा सकता और यदि वे काम करते भी हैं तो अपना मत प्रकट करने के लिए वे दुश्मन के दिलमें यह बात जमाना नहीं चाहते कि लड़ाई फिर छिड़ गई है, हम स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहे हैं और ऐतिहासिक को इस युद्ध का वर्णन लिखना तथा इस समय की महिमा का कीर्त्तन करना पड़ेगा । उनके कार्य में यह गौरव-पूर्ण महत्व नहीं होता । जब शासकों के हामियों की डींग उन्हें चुभती है तब वे सहसा क्रोध से पागल हो उठते हैं । उनकी क्षणिक उन्मत्त चेष्टा हृदय को शान्त करने लिए ही होती है, वर्त्तमान अत्याचार का नाश करने के लिए नहीं । हमको यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए और प्रत्येक काम-चलाऊ उपाय तथा शत्रु को तंग करने व फन्दे में डालने की असारता देखकर ये निरर्थक बातें त्याग देनी चाहिएँ और अपने समय का महत्व बढ़ाने के लिए महान् कार्य करना चाहिए ।

[५]

हमे कई त्रुटियाँ दूर करनी है । पहली त्रुटि हमारी यह धारणा है कि हमे स्वतन्त्रता के सिद्धान्त विशेष-विशेष स्थानो मे अंगीकार करने चाहिएँ और कुछ सभाओं और विशेष अवसरों पर अर्थात् जीवन मे बहुत थोड़े काल के लिए हमे इन सिद्धान्तो का पाबन्द रहना चाहिए । इन स्थानो के अतिरिक्त जहाँ प्रकट या अप्रकट रूप से दूसरे विचारों का प्राधान्य होता है हम अपने सिद्धांतो की भक्ति छोड़ देते हैं । हमारे सिद्धान्तों का मुख्य तत्त्व यह है कि हमें स्वतंत्रता की पताका अपने साथ सर्वत्र लेजानी चाहिए और इस नियम का उल्लघन कदापि न किया जाना चाहिए । जीवन स्वयं एक विस्तृत युद्ध-क्षेत्र है । किसी भी समय मनुष्य के स्वतंत्रता के सिद्धान्त ललकारे जा सकते हैं । उसे इनकी रक्षा तथा उपयोगिता सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध रहना चाहिए ।

जिन विचारों को मनुष्य सत्य समझ कर ग्रहण करता है वे केवल वक्तृता और सभाओं में गला फाड़कर चिल्लाने के लिए ही नहीं हैं। तुम्हारी आत्मा तुम्हें प्रेरित करेगी कि विपरीत स्थानों में तुम अपने सिद्धान्तों के प्रचारक ऋषि बनो ।

यह सत्य सिद्धान्त तुम्हारी आत्मा को निरन्तर अपनी याद दिलाता रहेगा । या तो तुम्हे इसका यश गाना होगा या इसे अस्वीकार करना होगा । और कोई चारा नही है, 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' । मनुष्यजीवन किसी उद्देश्य की ओर जाय,

दुराहा अवश्य मिलेगा और उसे इन सत्य और असत्य के दो रास्तों में से एक अवश्य चुनना पड़ेगा।

मनुष्य को सावधान रहना चाहिए कि कहीं सत्य का रास्ता छूट न जाय। तुम बिना किसी पक्ष को ग्रहण किये रह नहीं सकते। घटना-समूह तुम्हें अवश्य एक-न-एक ओर कर देगा। तटस्थ रहना भी तो एक पक्ष ग्रहण करना है। **पुरोहित, कवि अध्यापक, सार्वजनिक नेता, व्यवसायी, काम-काजी, व्यापारी सब को जवाबदेही करनी पड़ेगी।** जीवन के प्रत्येक मार्ग में सत्य विचार का असत्य विचार के साथ अवश्य संघर्ष होगा। बस, संघर्ष हुआ कि लड़ाई लड़नी ही पड़ेगी। इस युद्ध में हम तब हारते हैं जब खाली समय में अपने दिल को समझाने के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थों से अपने पक्ष के प्रमाण ढूंढ निकालना ही यथेष्ट समझते हैं। यह शास्त्रार्थों के युग की-सी बात हो गई। आदर्श की पुकार असर नहीं करती क्योंकि तब सिद्धान्त शास्त्रार्थ का विषय समझा जाता है। जो अपने सिद्धान्त पर विश्वास करके उन मनुष्यों का साथ देते हैं जो उसके लिये लड़ते हैं वे सिद्धान्त के भीतर जान डाल देते हैं और उन लोगो पर अपना सिक्का जमा देते हैं जिनके कट्टर दिलों में और किसी प्रकार असर नहीं हो सकता था। सिद्धान्त के लिए युद्ध करने से सबका ध्यान उसकी ओर खिच जाता है, सब दिल-चस्पी लेने लगते हैं और जनता शीघ्र गति से आगे बढ़ती है। जहाँ कहीं स्वतंत्रता की पुकार हमें अपनी ओर बुलाती है शत्रु का फन्दा भी हमारे लिए लगा हुआ रहता है। + + +

हम जानते हैं कि जो पादरी राष्ट्रीय भावों का प्रचार रोकने की चेष्टा करते हैं उन्हें औरों से अधिक पुरस्कार मिलता है। यदि अध्यापक राष्ट्रीय विचारों को कोसते हैं तो उनका वेतन बढ़ाया जाता है और उन्हें उपाधियाँ मिलती हैं। जो सार्वजनिक नेता राष्ट्रीयता का भण्डा फोड़ते हैं उन्हें उच्च पद और उपाधियाँ दी जाती हैं। पेशेदार आदमी को बढ़ती की, व्यापारी को अधिक व्यापार की और व्यवसायी को व्यवसाय की आशा दिलाई जाती है बशर्तें कि वे स्वतन्त्रता का झंडा हाथ से गिरा दें।

हर जगह सुयोग्य नवयुवकों के सामने मायावी प्रलोभन आवेंगे। ये प्रलोभन उनके कान में कहेंगे "तुममे योग्यता है; सिद्धान्त को छोडो और प्रकाश मे आओ, सिद्धान्त के कारण तुम अन्धेरे मे पड़े हो। इस समय यह सिद्धान्त किस काम आ रहा है? आओ, काम-काजो बनो।" इस लालच मे पड़कर नवयुवक दुर्बल पड़ जायँगे, उनके वश हो जायँगे और दुनिया की तारीफ लूटने के लिए प्रकाश मे आ जायँगे; किन्तु पुराना सिद्धान्त उनके मर्म मे घाव कर देगा और अन्त मे उस सिद्धान्त का लोप हो जायगा। वे भले ही ऐश्वर्य की अवस्था मे रहे किन्तु उनकी दुर्दशापूर्ण, आशातीत और पक्की हार हो गई। जब वे अपने सिद्धान्तो को पकड़कर खड़े है, अधिकारियो के हाथ सिद्धान्त बेचना अस्वीकार करते हैं और झण्डा उठाये हुए हैं तो और लोग अपने

पागलपने के कारण उन्हे बेवकूफ और निकम्मा बतलाते हैं; किन्तु जो यह बकते हैं वे नहीं समझते कि इन नवयुवकों ने संसार के साम्राज्यों की सब विजयों से बड़ी विजय प्राप्त की है । उनकी आत्मा में सच्ची ज्योति और चिर-सुन्दरता विराजमान रहेगी। इन उत्साही नवयुवको के हृदय में स्वतन्त्रता के संगीत का सुरीला स्वर सदा सुनाई देगा। उनके सामने स्वतन्त्रता की झाँकी बनी रहेगी, इस झाँकी ने संसार मे सदियों के संग्राम को स्थिर रक्खा है, व्यक्ति को उन्नत किया . राष्ट्र को शक्तिशाली बनाया है और खानाबदोश कौम को मरुभूमि से अपनी आशा के शुभ तीर्थ पर पहुँचाया है।

(६)

यदि वर्तमान समय मे हम अपनेको चरितार्थ करना चाहते हैं, तो हमें अपना सिद्धान्त छोड़ने का नाम न लेना चाहिए। इस विषय में कई सच्चरित्र पुरुष भी भूल करते हैं और जो भाव हमारी असफलता की जड हैं उन्हें वे उचित समझते हैं। हमारी भूल जताना तथा उसे समझना इतना आसान है कि यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतने दिनों तक हम सब ने उसे क्यों न समझा। जो **मनुष्य एक स्थान पर अपने सिद्धान्त को स्वीकार करता है और जहाँ उसपर ललकार पड़ती है उसे त्याग देता है वह सिद्धान्तघाती है।** वह हृदय में उसपर विश्वास करता हो, सम्वादपत्रों में उसके पक्ष में गुमनाम लेख भी छपाता हो तथा फिर कहीं पर उस सिद्धान्त के सामने सर झुकावे, किन्तु वह हर समय, हर युद्ध में सिद्धा-

न्त पर डटा नही रहेगा। ऐसा संकट आपड़ने पर जिसमें सब देशभक्त और कामकाजी आदमियो के काम करने की जरूरत पड़े और जिसमे यह साफ फैसला करना पड़ता हो कि वह राष्ट्र के पक्ष मे है या विरुद्ध, वह अपनी मान-मर्यादा देखकर मुखिया बनना स्वीकार न करेगा और सभासमितियों से विना कुछ कहे-सुने अनुपस्थित रहेगा। वह चन्दा देकर मेम्बर तो बना रहेगा पर-न्तु सभा मे योग देने मे बहाने करेगा। वह आपस में सिद्धान्त पर विश्वास जताकर तथा रिक्त स्थान की पूर्ति करने वालो को गुप्त रीति से उत्साह देकर संतोष कर लेता है। उसकी ये बातें भी इतनी दूर से होती है कि दुनिया सुन नहीं सकती। उसका सबसे बड़ा दोष यह है कि वह सोचता है कि अधिक साहसी काम करने से उसका जीवन संशय मे पड़ जायगा। इसलिए उसका मैदान से दूर रहना न्याय-संगत है। इस विषय में यही कहा जा सकता है कि उसका दूर रहना न्याय-संगत नही है। ऐसे अव-सर पर जिसने स्वयं अपनी जान ख़तरे मे डाल रक्खी है उसे दूसरों को निर्दोष बतलाने का भार अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए।

यह तो कदापि न होना चाहिए कि डरपोक लोगों को हृदय में माने हुए सिद्धान्त की ओर बढ़ाने के लिए खुले-आम नरम सिद्धान्त का प्रचार किया जाय।

वे जहाँ तक सिद्धान्त को मानते हैं उन्हे उसपर अमल करने के लिए उत्तेजित कीजिए। अपने सिद्धान्त मे कमी न करनी

चाहिए क्योंकि ऐसा आदमी बाद को समझता है कि वह ऐसी बातें वक गया जिनको वह बिलकुल नहीं मान सकता; यदि तुम किसी मनुष्य से वह काम करने को कहोगे जिसे तुम स्वीकार नहीं कर सकते और ऐसी बातें दूसरों से कहते हां जाओगे तो इससे तुम्हारे हृदय का बल क्षीण होगा और जिस बात को पहले घोर घृणा की दृष्टि से देखते थे उसके प्रति तुम धीरे-धीरे उदासीन बन जाओगे। तुम को मालूम नहीं होगा किन्तु तुम बदल जाओगे। पुराने मित्र तुम पर रोष प्रकट करेंगे। यह देख तुम भी उनपर झुँझलाओगे, यह नहीं जानोगे कि तुम कैसे बदल गये हो। विश्वासी पुरुष जिन सिद्धान्तोंपर विश्वास करता है उन्हें कुछ समय के लिए छोड़ नहीं देता या अपने सिद्धान्त के विरुद्ध बात नहीं करता। यदि वह ऐसा करे तो कुछ दिनों बाद वह अपने सिद्धान्त को प्रकट करने में घबड़ायगा। दो प्रतिकूल भावों का सामञ्जस्य करना प्रायः असम्भव है। हमें आधे दिल से काम करने की नीति छोड़ देनी चाहिए। हमारी नीति पूर्ण, स्वच्छ, अविरोधी तथा अशान्त और जिज्ञासु हृदयों को सन्तुष्ट करने वाली होनी चाहिए। जब हम इन अशान्त जिज्ञासुओं को अपनी ओर कर लेंगे तो अकर्मण्य लोग स्वयं उनके पीछे चले आवेंगे। यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि कोई भी मनुष्य अपने को या अपने साथी को गुरु कर्त्तव्य से बरी नहीं कर सकता। इस पर भी हमने कर्तव्यभ्रष्टता को बुरा नहीं समझा है। इससे हम गड़बड़ में पड़े हैं और हमने हानि उठाई है। इस ख्याल से कि हम भविष्य में वीर-अग्रणी बनेंगे, हम वर्त्तमान समय में मनुष्य बनने से भी वञ्चित रह जाते हैं। हम

उस धुंधले भविष्य का दृश्य देखते हैं जब हम महान् कार्य्य करने को प्रेरित किये जायँगे। हम यह नहीं देखते कि प्रेरणा इस समय भी वर्त्तमान है, युद्ध छिड़ गया है, हमे गुप्त स्थान से पताका उठा लेनी चाहिए और वीरता के साथ उसे फहराना चाहिए। संग्राम की इतनी समीपता से हृदय दहल सकता है; किन्तु युद्ध छेड़ने के इस भय का अर्थ पराजय के सब बुरे परिणामो को बिना विरोध किये सहन करना है। यह पराजय ऐसी है जो विजय मे परिणत हो सकती थी। यदि हम वीरता-पूर्ण भविष्य के लिए अपने को योग्य बनाना चाहते हैं तो हमें वर्त्तमान समय मे ही उठ खड़ा होना और मनुष्य बनना चाहिए।

(७)

कभी-कभी हमारा वास्ता निष्पक्ष लोगों से पड़ जाता है। युद्ध में ऐसी आवश्यकता आ पड़ती है। हमारे दुर्भाग्य से अपने बीच ऐसे भी लोग हैं जो आयर्लैण्ड की पुरानी स्वाधीनता को फिर से स्थापित करने पर विश्वास नहीं करते। किसी समय हम डिग न जायँ इसलिए यह अच्छा है कि हम ऐसे आदमियो के निकट भी रहें, क्योकि इनका स्पष्ट सत्यप्रेम हम को ठीक रास्ते-पर लाने के काम आ सकता है। हमें इन निष्पक्षवादियों को अपने में मिलाने की चेष्टा करनी चाहिए। जबतक यह नही होता इन लोगों से हमे निष्पक्ष स्थान पर आपस में समान प्रयोजन के लिए मिलना चाहिए। किन्तु स्वाधीनता का झण्डा हमारे साथ-साथ चलेगा। और यह बात सब से मुख्य है। जब निरपेक्ष लोगों से मिलने मे हम अपना झंडा साथ लिए चलते हैं तो क्या

जिस स्थान मे विरोधी मत के लोग मिलते हैं वहाँ हमे अपनी ध्वजा गिरा देनी चाहिए ? अपने साथ-साथ सिद्धान्त-रूपी झंडा ले चलने का अभिप्राय यह नहीं है कि हम दूसरों में बलात्कार से अपना मत ठूँसना चाहते है, बल्कि यह है कि हम अपने चित्त मे सदा इन सिद्धान्तों को स्पष्टतया रखना चाहते हैं जिससे प्रतिकूल मत हमपर जबर्दस्ती न लादा जा सके। इस बात का हमे ध्यान रखना चाहिए कि निष्पक्षता मे कोई फर्क न आने पाये। हमें इस गढ़े मे गिरने से भी सावधान रहना चाहिए कि ऐसे अवसर पर वह बात जिसे हम अपने सिद्धान्त के अनुसार नहीं मानते हमारे द्वारा स्वीकृत समझी जाती है, क्योंकि उसका खण्डन करने से निष्पक्षता नहीं रह जाती। निष्पक्षता का आशय यह नहीं है कि हम जिस बात का विरोध नहीं करते उसे मान लेते है। निष्पक्षता दो विरोधी पक्षों मे समभाव से रहने का नाम है। और चूँकि गम्भीर विषयों पर हम विभक्त हो रहे हैं इसलिए यह हानिकर विचार हमे दिल से निकाल डालना चाहिए कि इस मेल के स्थान पर एकत्र होने से हम निष्पक्षता के विरोधी सिद्धान्तों को बुरा बतलाते हैं। दोनों पक्ष के लोगों के लिए जो अपने सिद्धान्तो को जीवन का अंग बनाये हुए हैं, यह प्रशंसा की बात नहीं है कि वे अनायास ही सिद्धान्तो को बगल में दबा लें। नहीं, निष्पक्ष लोग अपने सिद्धान्त भूल जाने को नहीं कहते, किन्तु एक दूसरे के सिद्धान्तो का सम्मान करते हैं। निष्पक्षता का यह सिद्धान्त बहुत ऊँचा और गौरवशाली है। निष्पक्षपातियो की सभा में मनुष्य से अपना सिद्धान्त छोड़ने को नहीं कहा जाता, बल्कि पक्षपात-हीन मनुष्य और उसके सिद्धान्त पवित्र समझे जाते हैं।

(८)

जब हम समझ लेते हैं कि राष्ट्रीय भाव जीवन के प्रत्येक कार्य्य से सम्बन्ध रखते हैं, तो हम मालूम करने लगते हैं कि इन भावो की रक्षा करने के लिए बार-बार हमपर अचानक भार आ पड़ता है। जो लोग राष्ट्रीय-विचारों का प्रसंग छेड़ते हैं, वे जान-बूझकर इनका तिरस्कार करने के लिए ऐसा नहीं करते; उनमे संस्कार ही ऐसा पड़ जाता है कि वे अनजान में यह बात ठीक समझ लेते हैं कि वर्त्तमान या भविष्य काल मे हमारे प्रधान सिद्धान्त के लिए कही ठौर नहीं है और वे यह आशा करते हैं कि सब लोग उनसे सहमत हो। उनसे पहला और भीषण संघर्ष उनकी इस धारणा पर ही हो जायगा कि वर्तमान दशा बदल नहीं सकती। हमे इससे उलटी धारणा लेकर लड़ने के लिए शान्ति से कटि-बद्ध रहना चाहिए और अपने पुराने सिद्धान्तो पर अटल रहकर उनकी न्याय्यता प्रमाणित करनी चाहिए। हमे इस बात का भी पक्का-अनुभव कर लेना चाहिए, कि हमारे विरुद्ध जिन लोगो के विचार निश्चित, दृढ़ तथा सधे हुए हैं उनकी संख्या हमारी तुलना में बहुत कम है। यह थोड़ी संख्या शक्तिशाली अंग्रेज़ सरकार को छाती से लगाती है, बिना हेतु के उसकी आज्ञायें शिरोधार्य करती है और जन-साधारण पर अपना प्रभाव डालने की कोशिश करतो है। (जनसाधारण के विचार अनिश्चित होते हैं, जिस समय जो शासन करता है, उसी के साथ बहते रहते हैं।) हमें इस जनता के भीतर ही सत्य-सिद्धान्तों को फैलाना है, जिससे उनमे अधिक स्थिरता, अधिक उत्साह, अधिक जात्यभिमान का संचार हो और वे अपने को जातीयता के योग्य

सिद्ध कर सकें। उनको स्वातन्त्र्यवाद में तभी पूर्ण विश्वास हो सकता है, जब वे देखने लगेंगे कि हमारे पक्ष की रक्षा पग-पग पर की जा रही है। हमारा एक मात्र कर्तव्य अपने सिद्धान्त की रक्षा करना ही होना चाहिए। यह कर्तव्य हमें खोजना नहीं पड़ेगा; वह स्वयं उपस्थित होगा और उसके साथ हमारी परीक्षा हो जायगी। इसका एक उदाहरण लीजिए। जब नाना-मत के मनुष्य किसी काम के लिए एकत्र होते हैं और महत्वपूर्ण विषयों की चर्चा नहीं होती; अकस्मात्, अनजान में या आजमाइशी तौरपर एक आदमी ऐसा सवाल उठा देता है, जिससे सभा में मतभेद हो जाय। मान लीजिए वह आयर्लैंड में अंग्रेजों की प्रभुता स्वीकार करता है और आर्थिक लाभ की मूर्खता-पूर्ण आशा से हमारा स्वाधीनता का दावा छोड़ देता है। बस, इस विषय पर एकत्रित सभ्य वेहूदा बातें बक जाते हैं और कुहराम-सा मच जाता है। ऐसी स्थिति में बहुत सम्भव है कि आयर्लैंड की पूर्ण स्वाधीनता पर विश्वास करने वाला मनुष्य अपने साथ ऐसे मनुष्यों को देखेगा, जिन्हें उसका साथ देना चाहिए था किन्तु मातृभूमि के अधिकारों के विषय में उनके विचार अस्पष्ट रह गये हैं। ऐसा मनुष्य देखेगा कि दूसरे पक्ष के विषय में भी उनके विचार उतने ही अस्पष्ट हैं। वे कि-कर्तव्य विमूढ़ हैं और जो जिधर घसीटता है, उधर ही चले जाते हैं। इसलिए जब लड़ानेवाला मत पेश किया जाता है, उस समय यदि वह चतुर और स्वच्छ बुद्धि वाला हो तो उस राज-

नैतिक दाव-पेंच की कलई खोल सकता है और उन्हें हीन, निकम्मा और अपमानकारी सिद्ध कर सकता है, इन बातों से वह सभा में दूसरे सबों का मन अपने ढाँचे में ढाल सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उसे इसके लिए तैयार रहना चाहिए। यह बात हमें भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि वार्त्तालाप में बहुधा एक मार्के का शब्द किस प्रकार ढंग पलट देता है और जिस मनुष्य के विचार जोशीले और साफ़ होते हैं, उसका कैसा रोब जम जाता है। उधर दूसरे लोग उदासीन व अ-निश्चित रहते हैं। एक भी सिद्धान्त का कट्टर मनुष्य अच्छा है। कोई नहीं कह सकता जीवन की घटनायें उसे कहाँ डाल देंगी। उसके सिद्धान्त उसके मुँहपर ललकारे जा सकते हैं। उसे अपने मत का स्पष्टीकरण करना होगा। ऐसे अवसर पर लोग किसी प्रकार अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। किन्तु हमें अपनी ओर से आक्रमण न कर अपने सिद्धान्तों पर डटे रहना चाहिए पर जब दूसरा पक्ष आक्रमण करता है, तो उसके लिए तैयार रहना चाहिए। इससे भी कमज़ोर लोगों के हृदय में सिद्धान्त के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है।

हमें दोषारोपण करने की आदत से संक्रामक रोग की तरह बचना चाहिए, किन्तु हम अपने पक्ष की बातें साफ़-साफ़ कहेंगे और शत्रु-मित्र के साथ लड़ने के लिए तैयार रहेंगे। किसी समय ऐसा होता है कि ठीक उस जगह जहाँ इस बात की सबसे कम आशा होती है, इधर-उधर से भटकता हुआ एक मिथ्या सिद्धान्त चटकीले भड़कीले शब्दों के भीतर छिपकर हमारी बात का खण्डन करने के लिए आ पहुँचता है। तत्काल वायुमंडल को साफ़ करने

के लिए एक दो उज्ज्वल शब्द कह दिये जायँ। इससे हमारे मित्रों को ढाढ़स मिल जाता है और वे सम्हल जाते हैं। जब हम विरोधियों के बीच अकेले रहते हैं और विरुद्ध सिद्धान्त वाले यह समझते हैं कि हम उनके साथ हैं और हमारे सहयोग की आशा रखते हैं, तो हम उन्हें एक शब्द कहकर रास्ते पर ला सकते हैं; यह शब्द उन्हें रोक देगा। वे समझ जायँगे कि हमारे सिद्धान्त क्या हैं, जिनके लिए हम लड़ने को कटिबद्ध हैं। फल यह होगा कि सब हमारा सम्मान करने लगेंगे। चाहे लड़ाई लड़नी पड़े हम उक्त ढंग से काम करने पर अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं। हम सरल शब्दों में यों कह सकते हैं कि हम अपना झण्डा फहरा रहे हैं।

(६)

जो मनुष्य अपने जीवन को वीरता-पूर्ण भावों से भर देना चाहता है उसका किस प्रकार विरोध किया जाता है, यहां पर हम उसका थोड़ा उल्लेख करेंगे। लोग उससे कहेंगे कि तुम किस मायाजाल में पडे हो; सपने की-सी बातें कर रहे हो; या तो तुम्हारा दिमाग़ खराब है, या तुम मूर्ख हो। ऐसे मौक़े पर हमें यह देखना चाहिए कि हमारे समालोचक स्वयं मायाजाल में पड कर अन्धे तो नहीं बन गये हैं और हमें अपनी मूर्खता का उनकी बुद्धिमत्ता के साथ मिलान करना चाहिए।

× × ×

उस सम्पन्न पुरुष को लीजिए जो सुख-प्राप्ति की खोज में इधर-उधर भटकता फिरता है और दूसरे लोगों से कहता है—"मूर्ख मत बनो, मेरा उदाहरण ग्रहण करो।" थोड़ी देर के लिए उसे

अपना पथ-प्रदर्शक मान लीजिए। कुछ समय तक उसके साथ रहने से आपको मालूम हो जायगा कि उसका अवकाश हुल्लड़बाजी में ही कटता है, आनन्द में नहीं। उसकी उस समय की दशा देखने से जब कि वह बेखबर रहता है, पता चल जायगा कि उसका जीवन ग्लानि और सुस्ती में बीतता है। यह भोग-विलास का पुजारी जीवन के हीन या श्रेष्ठ चाहे जिस मार्ग पर चले, उसे वह भार प्रतीत होगा। श्रेष्ठ जीवन बिताने के लिए वह एक या दो बढ़िया संघों का सदस्य बनेगा, और भी अधिक विषयासक्त होगा, अधिक अवकाश और अधिक आनन्द ढूंढेगा, किन्तु इस प्रकार के पुरुष का ढंग आप सर्वत्र एकसा ही पायेंगे। जीवन उसके लिए भारी बोझ-सा बन जाता है, उसके हृदय में किसी प्रकार का आनन्द नहीं रहता, कोई उत्तेजना नहीं रहती, शक्ति नहीं रहती और न उमंग ही रहती है। इस दशा में रहने की इच्छा कौन करेगा?

एक और मित्र आपकी पीठ ठोक कर कहता है "ऐसे भोग-विलासी मत बनो किन्तु कामकाजी बनो, भ्रम में मत पड़ो, अन-होनी बातों में मत फँसो—भविष्य की बात कौन जानता है? हमें तो वर्त्तमान समय से काम निकालना है।" हमारे इस विश्वासी मित्र में विचार-शक्ति का अभाव है। वह दूसरे को भविष्य से सम्बन्ध तोड़ने की शिक्षा देता है और स्वयं ऐसा प्रस्ताव कर रहा है जिसका परिणाम हम भविष्य में ही जान सकेंगे। हमसे तो वह कहता है कि कौन जानता है, भविष्य में स्थिति हमारे अनुकूल होगी ही और अपने विषय में भविष्य को अनुकूल माने बैठा है। लेकिन हमारा तो यह दावा है कि भूत-

काल के समान भविष्य में भी हमारे सिद्धान्तों की प्रभुता रहेगी। भविष्य की घटनाओं के लिए कोई कुछ नहीं कह सकता। जो पुरुष हमारे सिद्धान्तों के लिए हमें स्वप्न देखनेवाला कहता है, वह वर्तमान या भूतकाल का ऐसा एक भी उदाहरण नहीं दे सकता, जिससे सिद्ध हो कि उसके ढंग के लोगा ने कुछ कर दिखाया है।

संसार में सभी स्वप्न देखते हैं। हां, कुछ लोग दुःस्वप्न देखते हैं और कुछ लोग स्वच्छ नक्षत्र-खचित आकाश के नीचे संगीतमय सुन्दर संसार का दृश्य देखते हैं।

(१०)

नवीन उत्साही को, जिसने हाल ही में सिद्धान्त को ग्रहण किया है, जानना चाहिए कि उसे ऐसे निराश करनेवाले अवसरों का सामना करना पड़ेगा, जिनका मुकाबला सबसे उत्साही, सब से साहसी और सबसे दृढ़-चित्त मनुष्यों को भी करना पड़ा है। हमारा कार्य मनुष्यों का कार्य है और इसमें ऐसे परिवर्तन हुआ ही करेंगे, जैसे मनुष्य के कार्यों में सदा हुआ करते हैं। इसलिए प्रत्येक ऐसे कार्य में भाग लेनेवाले सैनिक को चाहिए कि वह सदा दारुण दुःख सहने और ऐसे समय का सामना करने को तैयार रहे, जिसमें उसे अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दीख पड़े। ऐसे समय, निराशा, भयानक अँधेरे कुहरे की तरह, प्रत्येक सुन्दर वस्तु को और प्रत्येक आशा की किरण को ढक देती है। इस निराशा के कई कारण हो सकते हैं। दुर्बल

मनुष्य के अधिक परिश्रम करने अथवा कई वर्षों से ऐसा प्रयत्न करने मे जो निरर्थक सा दीखता हो या जिसे लोग भूल से गये हो यह खिन्नता पैदा हो सकती है। यह म्लानता अपनी ओर ऐसे मनुष्यो को देखकर भी पैदा हो सकती है जिनका इस कार्य मे भाग लेना ही एक पहेली है, जिनका न तो चरित्र ही ठीक है, न वे सिद्धान्त का महत्व ही समझते हैं और जिनकी जघन्य, कुत्सित तथा कुटिल नीति तुम्हे निर्जीव बना देती है; क्योकि तुम समझते हो कि जिस मनुष्य के हाथ मे हमारी जैसी निष्कलंक पताका हो उसे स्वभावतः धीर, वीर और गंभीर होना चाहिए। तुम मे यह मुर्दनी शत्रु के दिखाऊ अतुल बल और उन हजारो मनुष्यों की लापर्वाही के कारण फैल जाती है जो गद्गद् होकर स्वतंत्रता के गले तो चिपट जायँगे पर इस समय हताश होकर हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे हैं। इनके अलावा अपनी बातों में मग्न रहने वाले उस कामकाजी मनुष्य का विरोध भी हमे खिन्न कर देता है जो सदा प्रत्येक उच्च विचार और अटल सिद्धान्तो की आलोचना किया करता है।

यह सब कठनाइयाँ स्वतंत्रता के सैनिक को झेलनी होगी। जो संग्राम से थक गये हैं उन्हे समझ लेना चाहिए कि जिस समय सङ्कट की घडी आती है उस समय अन्धकार-पूर्ण आकाश में एक चमकता हुआ तारा भी दिखाई देता है। जहाँ एक या दो सैनिक हैं वहां वह व्यर्थ मालूम हो पर यदि वे दृढ़ रहे तो उनकी संस्था मे वृद्धि होगी। सत्य का प्रेम संसर्ग से फैलता है। जिस समय उन्नति के मार्ग मे बाधा उपस्थित होती है उस समय इस बात पर विचार मत करो कि हमारी इस वक्त क्या स्थिति

है, पर इस बात को सोचो कि हमने एक समय कैसे-उच्चता प्राप्त कर ली थी। इस समय हमारे लिए क्या बचा है और हम आगे कितना प्राप्त कर सकते हैं।

यदि कुछ लोग शिथिल पड़ गये हों और समय के अनुकूल अपने सिद्धान्तों को बदलने लगे हों तो अधिक दृढ़ होकर उनसे सहानुभूति दिखलाओ। मृत्यु का आलिङ्गन करने की अपेक्षा सिद्धान्तों को पूर्णतया पालन करते हुए जीवित रहना कठिन है।

कई उदार चरित्र पुरुष कठिन अवसर आ पड़ने पर पूर्ण साहस के साथ उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं। पर जीवित मनुष्य को सिद्धान्त के लिए समय-समय पर बिना चेतावनी मिले ही अग्नि-परीक्षा का भार वहन करना पडता है, और चूँकि सिद्धान्त के पालन करने में जीवन की सारी शक्ति होम देनी पड़ती हैं सिद्धान्त की माँगे इतनी जबर्दस्त होती हैं कि कई मनुष्य हिम्मत हार जाते हैं।

हमें जन साधारण के दिल में यह जमा देना है कि जीवित रहना उतना ही साहस का काम है जितना कि जान पर खेलना। किन्तु वर्तमान समय में हमें भ्रम में डालने के लिए यह चिकनी-चुपड़ी बात कही जाती है, "कि तुम से मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग करने को कौन कहता है, तुम से तो प्रार्थना की जाती है कि उसके लिए जीवित रहो।" इसके साथ इस बात पर जोर

नहीं दिया जाता कि जीवन का उद्देश्य तेजस्वी तथा सत्य आदर्श के लिए प्राण धारण करना है। निरी क्षमा-प्रार्थना मे ही अस्तित्व गँवा देना जीवन नही है। यदि जीवन के विषय में जनता मे ऐसे तुच्छ विचार फैल जायँ तो हमें मातृभूमि में मनुष्यो के स्थान पर ऐसे जीव दिखलाई देंगे जिन्हे भय से कम्प छूट रही हो। ऐसे प्राणियों मे न तो जीवित रह सकने की शक्ति रहेगी और न जान देने का साहस ही रहेगा। वास्तव में महान् संकट आ उपस्थित होगा। इन सब बातो से देश में निराशा छा जायगी। इन उदासीनता और विश्वासघात को साहसहीन मित्र और लड़ाके शत्रुओ को तथा अपने जीर्ण शरीर और चक्कर मे पड़ी हुई बुद्धि को देखकर हममें से जो पुराने सिद्धान्तो का प्रचार कर रहा है वह अपनी आवाज़ को अवश्य ही अरण्यरोदन समझ सकता है। जब तक खून में फिर गर्मी नहीं आ जाती और विचारो में फिर से तेजस्विता नहीं समा जाती तब तक इस अरण्यरोदन से ही काम चलता है। हज़ारो वर्ष पहले जो बातें नक्कारखाने मे तूती की आवाज़ समझी जाती थी उन मे इस समय बल और उत्तेजना दिखाई देती है किन्तु कामकाजी आदमी की आवाज़ न पहले उत्तेजित कर सकती थी, न अब कर सकती है।

(११)

अब अन्त मे हम विचार करेंगे कि हमारा निश्चित मत क्या होना चाहिए। अपने विचारो को आचार मे परिणत करना ही हमारा मत है। जब हम ऐसा करते हैं हमारा स्वाधीनता का

संग्राम गूढ़ तथा सार्थक रूप में शुरू हो जाता है। हमें भविष्य में अधिक सुगमता देखकर अपना कर्त्तव्य स्थगित न करना चाहिए। स्वाधीनता प्राप्ति के विषय की बात-चीत करने के लिए बाध्य होना उतना ही संभव है जितना कि साधारणतया सैनिक-संगठन कर युद्ध छेड़ने को मजबूर होना। हम जब लड़ाई छेड़ने, को मजबूर होने का उल्लेख कर रहे हैं, कोई यह न समझे कि हम सन्धि की बात-चीत को भुला देने की भयानक भूल के अपराधी हैं।

× × × ×

हम नहीं कह सकते कि भविष्य में हमारे ऊपर अचानक कौनसी घटना टूट पड़े किन्तु जब हम सर्वदा यह ध्यान में रक्खेंगे कि वर्तमान समय ही मार्मिक समय है तो हम हर घड़ी तत्पर रहेंगे। हमको वीरता के साथ अपना सिद्धान्त ठीक कर लेना चाहिए और अपने जीवन को उसके अनुसार चलाना चाहिए। **प्रत्येक मनुष्य को अपनी सेना के साथ बना रहना चाहिए और अपना झण्डा किसी के सामने न गिराना चाहिए।** ऐसा करने से हम अपने चारों ओर अपनी जड़ फैला सकते हैं। और तभी इतिहास-लेखक हमारे विषय में लिखेगा कि हमारा काल तेज-हीन नहीं बल्कि तेज-पूर्ण था। मैं फिर कहूँगा कि युद्ध के चढ़ाव-उतार के चक्कर में पड़ कर हमें समय देख अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले पुरुष की हीनता और शत्रु के विश्वासघात से व्याकुल नहीं होना चाहिए। हमें शान्त तथा संयत रहना चाहिए और बहुतसे

लोग जो साफ नीयत से या आनेवाले आकस्मिक भय के कारण हमारे दल मे नही हैं उन्हे, अपने जीवन के ढग से अपने सिद्धांत की सुन्दरता, सत्यता तथा नित्य-व्यवहारिकता दिखा देनी चाहिए। इससे वे लोग हमारे पक्ष में आ जायँगे जिनके दिल पर हमारी बात का असर हो सकता है, और इससे हमारा मत-भेद यथासंभव घट जायगा। इससे वे लोग भली-भांति समझ लेंगे कि जो अविचलित हो महान् सिद्धान्त की रक्षा करता है वह अवसर को ताकते रहनेवाले से अधिक अच्छा काम कर सकता है। तब वे समझेंगे कि स्वप्न मे भी उन्होने जिस बात को सोचने का साहस नही किया था उससे कितना अधिक काम होना सम्भव है; वे ध्येय को आँखों के सामने देखेंगे और इस दर्शन से उन मे स्थायी उत्साह, स्वच्छ बुद्धि और आत्मा की दृढ़ता उत्पन्न होगी। जब इतना हो चुका तो देश का उद्धार दूर का स्वप्न नही रह जायगा, किन्तु यथार्थ रूप मे उसका आरम्भ हो जायगा सब हृदयो मे फिर से जीवन-शक्ति का संचार हो उठेगा और आयर्लैण्ड स्वतन्त्रता के अन्तिम संग्राम मे प्रवेश कर के सफलता-पूर्वक बाहर निकल आयगा तथा संसार के राष्ट्रो मे अपना उचित स्थान फिर से ग्रहण करेगा।

सप्तम परिच्छेद
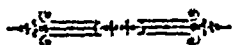
दृढ़ भक्ति

(१)

मनुष्य की प्रशंसा में सब से बड़ी बात यह कही जा सकती है कि वह अपने सिद्धान्त का पक्का है। चूंकि हमारे सारे इतिहास में मातृभूमि की दृढ़ भक्ति ही देशवासियों का प्रधान गुण रहा है इसलिए इस बात के निर्णय का उपयुक्त समय आ गया है कि कौन मातृ-द्रोही हैं और कौन दृढ़ देशभक्त। जब मन्दमति सरकार ने भलीभांति जान लिया कि हम पूरे देशभक्त हैं तो उसने हमारे वीर नेताओं को राजद्रोही बतलाकर न्याय से वञ्चित करने की चेष्टा की।

जब मनुष्य ऐसी बुराई के विरुद्ध उठ खड़ा होता है जिसने देश में घर कर लिया हो तो हम उस मनुष्य की पद-दलित सत्य के प्रति जो दृढ़ भक्ति है उसकी प्रशंसा करते हैं। हम ऐसे बागी की सराहना नहीं करते जो सिर्फ बग़ावत के लिए ही राज उलटना चाहता है। हमें यह विषय भली-भाँति समझ लेना चाहिए, नहीं तो जब हम सदियों की चेष्टा के बाद स्वतन्त्रता फिर से स्थापित करेंगे तो प्रत्येक दुर्जन और विश्वासघाती को हमारी स्वतन्त्रता पर दोष लगाने का अवसर मिलेगा और वह शत्रु को

फिरसे हमारे देश में घुसाने का षड्यन्त्र रचेगा। **सिद्धान्त के प्रति दृढ़ भक्ति साधु-स्वभाव पुरुष का सद्गुण है।** आयर्लैण्ड में दृढ़ भक्ति (Loyality) शब्द का दुरुपयोग हुआ है और इसको व्यर्थ ही बदनाम किया गया है। यह स्मरण करके कि हमारे सब समय के वीर पुरुषों में यह गुण वर्त्तमान रहा है हमें फिर इसे उचित सम्मान का पद देना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर हमे कई ऐसी मार्मिक स्थितियों का उल्लेख करना पड़ेगा जिनके कारण हमें हैरान और परेशान होना पड़ा है। हमे सरकार के उपकरणों का उपयोग करते हुए अपने उन स्वत्वों का प्रतिपादन करना पड़ेगा जिन्हें वह इन्कार करती है। एक बातपर स्थिर रहने का जो सबसे बड़ा प्रश्न आजकल उपस्थित है उसपर भी ध्यान देना होगा। एक ओर राजनीति में भाग्यपर खेलनेवालों के प्रति और दूसरी ओर निरुत्साह से काम करनेवाले सत्य-हृदय मनुष्य के प्रति अपने भावों का विचार करना होगा। दृढ़ भक्ति के अन्दर यह सब बातें समा जाती हैं और इससे यह भी मालूम होता है कि जो आदमी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए बगावत करता है वह ठीक वैसा ही है जैसा स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए प्राण देनेवाला। ऐसा आदमी बदलते हुए समय के साथ-साथ अपने रंग-ढंग को नहीं बदलता। वह सदा सिद्धान्त का कट्टर भक्त रहता है क्योंकि घोर अन्धकार के समय जब शासक उसे जङ्गली, दुष्ट और राजद्रोही बताकर कलंकित करते हैं तब भी वह पहले के समान अपने पक्ष का दृढ़ भक्त बना रहता है और अन्त तक वैसा ही बना रहेगा। हाँ, देश के लिए मृत्यु का आलिंगन करनेवाला वीर वास्तव में

राष्ट्र का दृढ़ भक्त है और शत्रु का प्रत्येक सहायक और प्रोत्साहक आयर्लैण्ड का और आयरिश-जाति का द्रोही है।

(२)

जब आप स्वार्थ-साधक विरोधी से अनुरोध करते हैं कि मूल तत्त्वों के आधार पर इस विषय की आलोचना करे तो वह फौरन अपनी दलीलों की कमजोरी मालूम कर लेता है और प्रसङ्ग बदल कर आपके आचार और विचारों की स्थिरता पर चोट करता है। इसलिए हमें पहले ही समझ लेना चाहिए कि किसी विषय की व्याख्या करने में जो युक्तियाँ दी जाती हैं उनका सापेक्ष गौरव और महत्व कितना है।

सिद्धान्तों का सबसे अधिक महत्व इसलिए नहीं है कि उनके द्वारा किसी विषय में प्रवीणता से युक्तियाँ दी जा सकें किन्तु उनका महत्व इसलिए है कि उनके भीतर एक महान् तत्व छिपा रहता है जो सारे जीवन को उज्ज्वल बनाये रखता है और प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य को नियम में रखता है। सिद्धान्त व्यक्ति के मन पर प्रकाश डालता है। वह हृदय को उत्साहित करता है निर्मल बनाता है और बल देता है। वह चित्त को एकाग्र करता है और जीवन की सब घटनाओं को एक सीध में लाकर आँखों के सामने स्पष्ट कर देता है जिससे प्रत्येक मनुष्य को हर बात का उचित स्थान और

परस्पर सम्बन्ध मालूम हो जाता है। सिद्धान्त मनुष्य को उस दर्जे पर पहुँचा देता है जहाँ वह शास्त्रार्थ नहीं करता किन्तु विश्वास करने लगता है।

अवतक वह इच्छा और उद्देश्यहीन होकर इधर-उधर भटक रहा था, सब शास्त्रों का रसास्वाद कर चुकने पर भी घोर निराशा मे डूबा रहता था। वह नही समझता था कि उसकी आत्मा मे किस वस्तुका अभाव है। वह इस अभाव-रूपी व्याधि को दूर करने के लिए संजीविनी बूटी की इधर-उधर खोज कर रहा था कि इतने में महान् ज्योति का उसपर प्रकाश पड़ता है और बाहर से बल प्राप्त करने के बदले वह अपनी आत्मा को पहचान लेता है। बस, अन्धे को दो आँखे मिल गईं। हमारी तत्त्वबोध की शक्ति अबतक भ्रम के बादलो से छिपी हुई थी। सत्य सिद्धान्त ने इन बादलों को छिन्न-भिन्न कर दिया और इस दृष्टि को स्वच्छ, सुन्दर और नवजीवन दान करनेवाली बना दिया। जिसने यह दृष्टि पा ली तर्क का उसपर असर नही होता। इसका अर्थ यह नही है कि वह दलीलों को मानता ही नही, बल्कि इसके विपरीत वह प्रमाणों का पूरा-पूरा उपयोग करता है। हाँ, उसकी आत्मा मे ऐसा बोध हो जाता है जिसे निरा नैयायिक प्राप्त नहीं करा सकता और यह दुर्ज्ञेय पदार्थ ही उसके नवीन जीवन का रहस्य खोलता है। वह आज तक नास्तिक था, निर्बल था और उसका जीवन निष्फल था। अब वह आस्तिक, सिद्धान्त के लिए लड़ने वाला और विजयी बन गया है। जो उसे केवल भावुक समझता है उसने उसका पूरा महत्व नहीं समझा।

भावुक ऐसे विचार का प्रचार करता है जिसके अनुसार वह संसार को पलटना चाहता है, किन्तु सिद्धान्त का अनुयायी जीवन के एक ऐसे नियम को मानता है जिसके अनुसार उसे काम करना पड़ता है।

उसकी आत्मा इतनी तेजी से आगे बढ़ती है कि कोई भावुकता उसे रोक नहीं सकती। इसके अतिरिक्त उसके पास अपने सिद्धान्त के अनुकूल मौलिक और दिल में जम जाने वाली दलीलें होती हैं और उसके खून में नवीन और चमत्कृत कर देने वाली जीवन-शक्ति होती है। सिद्धान्त-शून्य व्यक्ति अपनी निकम्मी युक्तियों में फँसा हुआ तबतक वाद-विवाद में पड़ा रहता है जब तक उसकी बुद्धि चकरा नहीं जाती। उसकी समझ में नहीं आता कि प्रत्युत्पन्नमतिवाला (हाजिर जवाब) मनुष्य किसी भी साध्य को योग्यता के साथ सिद्ध कर सकता है और फौरन अपनी बात लौटाकर उतनी ही योग्यता के साथ दूसरा पक्ष भी सिद्ध कर देता है। हम रात-दिन देखते हैं कि सभाओं में विषय निर्धारित कर दिया जाता है और दोनों पक्षों के समर्थकों को नियुक्त करके वाद-विवाद हुआ करता है। यह वाक्-चातुर्य है, बुद्धि का कौशल है, किन्तु तत्त्वज्ञान आत्मा को उत्तेजना देनेवाला है। इसलिए सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध करने के लिए वाक्-चातुर्य की आवश्यकता नहीं है। यह सत्यता सिद्धान्त के उस गुण में वर्तमान रहती है जिससे उसपर विश्वास करनेवाले के लिए सारे जीवन का रहस्य खुल जाता है, जिससे उसका हृदय फड़क उठता

है और वह प्रफुल्लित, सुन्दर, बुद्धिमान और साहसी बन जाता है।

(३)

अब हम सिद्धान्त की स्थिरता का जो प्रश्न उठाया जाता है उस पर विचार करेंगे। हमारे विरोधी कहते हैं "अच्छा महाशय! जब आप अंग्रेजी राज्य को नहीं मानते तो उनके सिक्को और स्टाम्पों को व्यवहार मे क्यों लाते हैं? आप पार्लमेंट को नहीं मानते तो फिर पार्लमेंट के कानून-द्वारा स्थापित की हुई काउन्टी कौंसिलों से क्यो काम लेते है? स्थानिक शासन से क्यों लाभ उठाते हैं?" इत्यादि। ये तर्क सुपरिचित हैं और इनका उत्तर भी कुछ कठिन नही है। यद्यपि इस समय तोपें नहीं गरज रही हैं तो भी आयर्लैंड यथार्थ में युद्ध की दशा में है। हम स्वाधीनता को फिर से प्राप्त करने के लिए लड़ रहे हैं। संग्राम मे संकट के समय शत्रु को शिथिल होना पड़ा है और स्थानिक शासन और अन्य कार्यों के मोर्चे लाचार होकर हमें सौंप देने पड़े हैं। हम इनको लड़ाई मे जीते हुए स्थानों की भाँति समझते हैं और इनके द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाने, अपने देश को जागृत करने व उठाने और शत्रु-सेना की अन्तिम चौकी छीन लेने की तैयारी करेंगे। यह सर्वथा उपयुक्त है। रण-क्षेत्र में उस सेनापति की सदा प्रशंसा की जाती है जो शत्रु के अड्डे पर कब्जा जमाकर अन्तिम विजय के लिए उसका प्रयोग करता है। इससे विजय के शुभ चिन्ह मालूम देते हैं। दूर से युद्ध की गति का अन्दाज़ लगाने वाले को इससे पता चलता है कि युद्ध कैसा हो रहा है और विजय किसकी होगी। यदि युद्ध-क्षेत्र से यह खबर आ जाय कि हमारे सिपाही शत्रु से मिल गये हैं और

उन्होंने उसकी प्रभुता स्वीकार कर ली है तथा वे उसके झंडे के नीचे आ गये हैं तो और लोगों में आतंक छा जायगा। यही प्रश्न विचारणीय है। यदि शत्रु रियायती तौर पर हमें कोई स्थान देता है तो उसका अधिकार जमाने का हमें कोई हक़ नहीं है। इन रियायतों से स्वार्थ-साधन करनेवाला और अपने सिद्धान्तों को शत्रु के हाथ बेंच देने वाला अपने ही कर्मों से कलंकित हो जाता है।

× × ×

जो हो, स्थानिक स्वराज्य की मशीन के कल-पुर्ज़े जनता के हाथ में हैं। यद्यपि तत्काल लाभ उठाने के लिए यह मशीन चलाई जा रही है तो भी इससे हम परम ध्येय की ओर बढ़ रहे हैं। लोग यह बात भले ही न जानें, तो भी वे देश की सर्वाङ्ग सम्पन्न, उन्नति करने और प्राचीन गौरव और प्रभाव फिर से स्थापित करने के लिए काम कर रहे हैं। जो इस बात का मर्म समझते हैं वे इस उन्नति की चाल को तेज़ करने के लिए प्रत्येक पद पर अपना अधिकार जमाते हैं और उन रियायतों को काम में लाकर ध्येय को हमारे सामने और भी स्पष्ट-रूप से रख देते हैं। विदेशी सरकार जब अपने विरुद्ध किये जाने वाले आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए रियायतें बख्शती है और देश-भक्त उसकी इच्छा के विपरीत उनको अपने अधिकार और भी बढ़ाने के काम में लाते हैं, तो वह सरकार लोक-सम्मत शासन को पुराने ढर्रे के कुशासन की ओर लाने की चेष्टा करती है। इस समय हमारे देश में इसी प्रकार का झगड़ा चल रहा है। बीच-बीच में शत्रु हमारे आन्दोलन को रोकने का प्रयत्न करते हैं। फल यह होता है कि

विशेष अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आन्दोलन तीव्र रूप धारण करता है। हमारे समय में आयर्लैण्ड में कृषकों की दशा सुधारने के लिए घोर आन्दोलन हुआ, होमरूल की लड़ाई छिड़ी, विश्वविद्यालयों को जनता के अधिकार में लाने का उद्योग हुआ, आयरिश भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रयत्न हुआ। परिणाम यह हुआ कि भूभाग सम्बन्धी धारा, स्थानिक शासन-धारा और विश्वविद्यालय-सम्बन्धी धारायें पास की गई और विश्वविद्यालयों में आयरिश भाषा को गौरव का स्थान मिला। इनमें से प्रत्येक विभाग पर अधिकार जमाने से हम एक-एक कदम आगे बढ़ते गये। हम इसको इसी दृष्टि से देखते हैं और इसीलिए इनका उपयोग करना उचित समझते हैं।

जो पुरुष आयर्लैंड की स्वाधीनता को फिर से स्थापित करने के पूरे-पूरे और गूढ़ अर्थ को समझता है उससे यदि कहा जाय कि भाई! हमें स्थानिक शासन और व्यवसाय का अधिकार छोड़ देना चाहिए क्योंकि यह सरकारी पक्ष के हैं और शत्रु-सेना से सम्बन्ध है, तो ऐसी बात को वह ध्यान देने योग्य नहीं समझेगा। जो लोग हम पर आक्षेप करते हैं कि हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं, हमें उनको यह मुँह-तोड़ जवाब देना चाहिए कि हम शत्रु के मोर्चों पर कब्ज़ा कर रहे हैं।

[४]

सिद्धान्त की स्थिरता की मिथ्या धारणा का खण्डन कर चुकने पर भी हमें एक ऐसी दूसरी धारणा का निरूपण करना है जिसे अभी तक सर्व साधारण ने नहीं समझा है।

यदि हम स्वतन्त्रता की सशक्त सेना तैयार करना चाहते हैं तो हमें ऐसे ही सैनिक भर्त्ती करने चाहिएँ जो उद्देश्य को भली भाँति समझे हुए हों, जो लक्ष्य के लिए पूरे दिल से सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते हों और जो सदा यह प्रण किए रहते हों कि हम अपने झण्डे की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए युद्ध से कभी मुँह न मोड़ेंगे।

इस बात की महत्ता तभी मालूम हो सकती है जब हम संसार की ऐसी घटनाओं पर विचार करते हैं। जब तक मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलता प्रत्येक आन्दोलन को ऐसे राजनैतिक बहुरूपिये घेरे रहेंगे जो समय को देख कर अपना काम निकालने के लिए एक दल छोड़ कर दूसरे में जा मिलते हैं। ऐसे लोगों का एक ही सिद्धान्त होता है—जिस दल की प्रभुता हो उसी का पक्ष-समर्थन करना—और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए वे किसी भी दल में मिलने और किसी भी दल को धोखा देने में देर नहीं लगाते। ऐसे आदमी को सब लोग भली भाँति जान जाते हैं। ऐसे निष्कपट पुरुष को जो आज तक उल्टे रास्ते पर चल रहा था और अब सच्चे दिल से सत्य की खोज करने के बाद हमारे झंडे के नीचे आजाता है, हम फ़ौरन पहचान जाते हैं किन्तु जिस उद्योग

में राजनैतिक बहुरूपिया अपने दल में भर्ती कर लिया जाता है और उसको प्रभुता दी जाती है वह उद्योग अवश्य विफल होगा। यह बात कुछ विचित्र सी मालूम होगी कि ऐसे लोग भी बड़े-बड़े आन्दोलनों में भर्त्ती किये जाते हैं। इसका यही कारण है कि नेता तत्काल लोगों को अपने दल में मिला लेना चाहते हैं और जो अभी तक अपने दल में नहीं आए हैं उन्हें अपनी बढ़ती हुई संख्या से विश्वास दिलाकर उनके दिलों में धाक जमाना चाहते हैं। हम अपने बढ़ते हुए बल की भावी हानि का ख़याल नहीं करते क्योंकि जब राजनैतिक चालबाज़ सिद्धान्त की दुहाई देता हुआ हमारे दल में घुसता है तो वह बड़ा सुशील और सच्चा मालूम पड़ता है और हम उसे अनुभवी पुरुष समझकर उसका स्वागत करते है। अपने बल को बढ़ाने की चिन्ता में हम उसे बिना भेद-भाव के मिला लेते हैं। किन्तु हमें अपने आदमी पर पूरा विश्वास होना चाहिए। हमे स्मरण रखना चाहिए कि इस चालबाज़ से शत्रुता की अपेक्षा मित्रता अधिक हानिकर है। हमें यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि जनता—जिसे भ्रम दूर कर के हम अपने सिद्धान्त की ओर लाना चाहते हैं—चुपचाप हमारी कार्रवाई देख रही है। सम्भव है हमारे सिद्धान्तो से जनता हमारी ओर खिंच रही है और हमारी जाँच पड़ताल करने के लिए हमारे पास आ रही है। **जनता कुछ न जाने, पर वह सिद्धान्त-भ्रष्ट पुरुषों को अवश्य पहचानती है।** जब हमारे दल और सभाओ मे वह ऐसे पुरुष को पाती है तो वह हमारी दलीलें सुनने या हम से प्रश्न करने के लिए न ठहरेगी। वह हट जायगी और हमसे दूर रहेगी। किसी

आदमी की पहचान उसकी संगति से होती है। इस पुरानी कहावत की व्यापकता जितनी हम समझते हैं, उससे बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त उस राजनैतिक चालबाज' को भर्ती करने से हमारे विचार-व्यवहार के बीच कुछ अन्तर आ जाता है।

हम स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, न कि सांसारिक लाभ या सुख की आशा से। हम इसलिए लड़ रहे हैं कि मनुष्य की उदार वृत्तियां बाध्य करती हैं कि मनुष्य अपना स्वतंत्रता का स्वत्व प्राप्त करे जिससे उसका जीवन सुन्दर और पराक्रमी बने। वास्तव में इस से बढ़कर आश्चर्य की बात कोई नहीं हो सकती कि ऐसे धर्म-युद्ध में पामर, कपटी और कोरे स्वार्थी मित्र हमारे दल में हों।

हमे सोलहो आने अपने सिद्धान्त का भक्त होना चाहिए और इस बात की आशंका नहीं करना चाहिए, कि आरम्भ में हमारी संख्या बहुत कम है। उस जन-समूह की अपेक्षा जिसकी दृढ़ता पर हम निर्भर नहीं रह सकते सच्चे आदमियों का छोटा-सा दल अधिक काम करने वाला होता है। इस दल की संख्या और शक्ति बढ़ती जायगी। अन्त में इसके चारों ओर वह सेना एकत्रित हो जायगी जिसे कोई न हरा सकेगा।

[५]

विचार और व्यवहार की एकता के यथार्थ ज्ञान के कारण हम राजनैतिक चालबाज़ से जिस प्रकार बचे रहते हैं उसी प्रकार इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निरुत्साही किन्तु शुद्ध हृदय मनुष्य से कैसा व्यवहार होना चाहिए। निरुत्साही पुरुष कहता है इङ्गलैण्ड से अलग हो जाना इस समय संभव नहीं है। वह होम-रूल या आयर्लैण्ड के लिए स्वतन्त्र पार्लमेंट स्थापित करने का प्रस्ताव करता है। साधारण दृष्टि से यह बात उचित जँचती है और हमारी इच्छा इस आधार पर अपने देश के दूसरे दल वालो से सन्धि करने को होती है और सन्धि कर भी ली जाती है। फल यह होता है कि ऐसे लोग एक स्थान पर आकर जमा हो जाते हैं जिन मे से कुछ तो पूर्ण स्वतंत्रता पर विश्वास करते हैं, कुछ आंशिक स्वतन्त्रता को पूर्ण स्वतत्रता की पहली किश्त मान लेते है और कुछ केवल आंशिक स्वतंत्रता को ही अपना ध्येय मान कर उससे संतुष्ट हो जाते है। थोड़े ही दिनों में ही यह संधि टूट जाती है और सब लोग मत-भेद के कारण काम से अपना हाथ खीच लेते है। दीर्घ दृष्टिवाला पुरुष जानता है कि प्रत्येक प्रस्तुत कार्य अन्तिम ध्येय और सिद्धान्त के अनुकूल होना चाहिए, इसी से हमारे उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। उसे यह भी मालूम रहता है कि इस समय हम जो काम कर रहे हैं, उसके भीतर हमारा सिद्धान्त छिपा रहता है। ऐसे समय उसे अपने पक्ष का कट्टर अनुयायी बना रहना चाहिए और वह सिद्धान्त भी मानना चाहिए, जिसे और लोग

भले ही न मानें किन्तु वह अपने जीवन का व्रत समझता है। लेकिन उसके नये मित्र ऐसे सिद्धान्त से बँधना अस्वीकार करते हैं, जो उनकी दृष्टि में कानून के बराबर है, पर औरों के लिए, जिनका कुछ मूल्य नहीं है। सारे झगड़े की जड़ यही है। जो मित्र किसी समान उद्देश्य को लेकर मिलते और काम करने का विचार करते हैं, वे देखते हैं कि उनके बीच ऐसे विषय छिड़ जाते हैं जो विवादास्पद हैं। वाद-विवाद आरम्भ हो जाता है और बहस गरम हो उठती है, आपस में गाली-गलौज होने लगती है, मनोमालिन्य पैदा हो जाता है और सभा भङ्ग हो जाती है।

अपना मन मारकर जो मित्रता की जाती है उससे मनोरथ तो सिद्ध नहीं होता बल्कि उसके द्वारा जो शुद्ध-हृदय मनुष्य एकत्र किये गये थे, उनके बीच अविश्वास उत्पन्न हो जाता है।
इस कार्य को प्रस्ताव में परिणत करने से कुछ लाभ नहीं हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिन लोगों को अपने पूर्ण मांगों की स्वच्छ धारणा है उन्हें सावधानी तथा दृढ़ता से अपना कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए और अपने ही बल पर आगे बढ़ना चाहिए। इस पर कई लोग दुहाई देने लगते हैं—देखिए। फिर आपस में फूट पड़ गई, फिर वही बात आगई यह लोग आपस में मिल ही नहीं सकते, इत्यादि। हम इन लोगों की बात सुनकर मुँह नहीं मोड़ेंगे। किन्तु ध्यान रहे कि काम पड़ने पर हमारा पूरा-पूरा साथ न दे सकने वाले शुद्ध-हृदय मनुष्यों से बिना सिद्धान्तों की हत्या किये भी मेल हो सकता है। ऐसा

स्वतन्त्र मेल हमारा वह मनोरथ सिद्ध कर सकता है जिसे पूरा करने के लिए हमने सब दलों को मिलाया था और अन्त में जिस से हमारा सारा काम चौपट हो गया था।

इस विषय पर सबसे **मुख्य बात यह है कि उस सच्चे आदमी की नीयत बुरी न बतानी चाहिए जो हम से भिन्न मार्गपर जाना ठीक समझता है।** जिस आदमी से हमारा मतभेद होता है, उसकी नीयत पर आक्षेप करना किसी प्रकार भला नहीं कहा जा सकता। बहुधा यह देखने मे आता है कि वह उतना ही सच्चा है जितने हम। उसने हमसे अधिक समय तक और हमसे अच्छी सेवा की है और दूसरों से मेल-मिलाप रखने की फिक्र मे, उसने मित्रता का ढङ्ग स्वीकार किया है। हम उसके ढंग को पसन्द नहीं कर सकते किन्तु उस-पर बुरी नीयत का दोष लगाना सरासर अन्याय है और इसका परिणाम सदा ही भयंकर होता है।

कर्म-शून्यता को दूर करने के लिए कई बार हम आपस में ही लड़ बैठते हैं। हमें ऐसा न करना चाहिए और सबके समान-शत्रु से ही मतलब रखना चाहिए।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि यह बड़े पराक्रम का काम है, इसमें स्थिति स्वयं धीरे-धीरे अधिकाधिक निश्चित होती जाती है और ऐसा मालूम होता है कि हमे अपनी सारी शक्ति इसके पीछे लगा देनी होगी। मान लीजिए कि एक इञ्जिनियर एक बड़ी इमारत तैयार कर रहा है। वह किसी जगह कुछ असावधान

रहा या किसी कठिनता के कारण नज़र बचा गया, उसकी इस भूल से सारी इमारत भद्दी हो जायगी और हो सकता है कि सारी इमारत गिर जाय। इसलिए हमें निधड़क हो सिद्धान्त पर डटे रहना चाहिए। जब उक्त सब बातें मिलकर एक अविरोधी पूर्ण सिद्धान्त में परिणत हो जाती हैं, तो देश भर में ज्योति फैल जाती है और पुराना तेज फिर स्पष्ट हो जाता है, नीच मनुष्यों की नीचता धुल जाती है, डरपोक लोगों में उच्च कोटि की वीरता आ जाती है और निडर लोगों का पक्ष सिद्ध हो जाता है। मातृ-भूमि जाग उठती है, उसमें सिद्धान्त के लिए लड़ने का जोश आ जाता है और वह विजय की ओर प्रयाण करती है।

(८)

सिद्धान्त-भक्ति का निस्सन्देह यही सुन्दर अर्थ है। हमें यह अपनी पताकाओं में लिख लेना चाहिए और सारे संसार में इस की घोषणा कर देनी चाहिए। यह अर्थ दुविधाहीन, गौरवपूर्ण, भय-शून्य और अपरिवर्त्तनीय है। इस परिच्छेद में उत्साह, यथार्थता और सावधानी के साथ जो कुछ लिखा गया है, उसके संशोधन और परिवर्धन की कभी आवश्यकता न पड़ेगी, भले ही कुछ काल के लिए भाग्य के पलटने से हम अपराधी समझे जायँ। यदि स्वतन्त्रता के संग्राम में शुद्ध हो जाने के बाद हम अन्तिम युद्ध से संसार को चौंधिया देनेवाली विजय को प्राप्त करके बाहर निकलेंगे, तो हमारी यह दृढ़ भक्ति फिर भी बनी रहेगी। यह मध्यान्ह के सूर्य के समान चमकती है। इसमें वही रम्यता और स्थिरता रहती है जिससे हमारे संग्राम के पद-पद पर प्रकाश पड़ता गया था। पूर्ण विजय प्राप्त होने के बाद भी सम्भव है कि यह

दृढ़ भक्ति राष्ट्र के विधि-नियम बनाने के समय और राजाओं, राष्ट्रपतियो तथा राजनीतिज्ञो के चक्कर में पड़े हुए इस संसार मे राष्ट्रो का नया संगठन करने मे हमें पथ दिखायेगी। इसपर एक चल-चित्त मनुष्य जिसके हृदय में कुछ तो नई ज्योति पड़ी हुई है और कुछ पुराना डर बना हुआ है कहता है "आप बडी भारी आशा किये हुए हैं। हम मनुष्य है देवता नही।" यह बिलकुल ठीक है कि हम देवता नही है। चूंकि हममे मनुष्य-स्वभाव-सुलभ त्रुटियाँ हैं, हमारा मन भ्रान्त है, हमारा चित्त का वेग सहसा उबल पड़ता है; इसलिए हममें से सबसे अधिक आत्म-विश्वासी पुरुष भी अपने को किसी समय दुर्बलता से सना हुआ पाता है। जब वह आचार तथा विचार में डावाँडोल दिखाई पड़ता है, तो उसे कौन ठीक रख सकता है। वह असहाय, अपमानित तथा भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे पुरुष को समझ लेना चाहिए कि हम इस घमड से एक उत्तम सिद्धान्त अपने सामने नही रख रहे हैं कि हम सुगमता से उसका पालन कर सकेंगे, किन्तु भली-भाँति यह समझ कर कि हमारे लिए इस सिद्धान्त से दूर रहना सम्भव नही। अटल सत्य यही है। जब संसार मे दृढ़-विश्वासी पुरुष पैदा होता है, तो जन्म से ही उसे हृदय-बल का इतना सहारा रहता है कि वह बल उसे कभी धोखा नही देता। उसका सिद्धान्त उसे पथ दिखलाता है और नये युद्ध मे कूदने के लिए तथा नई दुनियाओ को जीतने के लिए उसकी शक्ति इतनी अधिक बढ़ा देता है कि जगद्विजयी सिकन्दर की बुद्धि मे भी इस शक्ति का ध्यान न आया होगा।

मनुष्य को उसके हृदय का विश्वास और उस

का सिद्धान्त योग्य बनाते हैं। यदि नीच-से-नीच पुरुष भी सच्चा है और अच्छी सेवा कर रहा है तो वह बड़े-से-बड़े पुरुष के समान है।

हमें निकम्मी बातें और क्षुद्र-हृदय मनुष्यों की कुटिल-नीति छोड़ देनी चाहिए और अपने को मुक्त करने की आशा से दिव्य पताका तथा मनुष्य व देवताओं की दृढ़ सत्य-भक्ति का अवलम्बन करना चाहिए।

अष्टम परिच्छेद
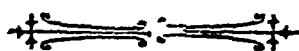
नारी-धर्म

[१]

भविष्य में जो महान् युद्ध होगा उसका पहला मोर्चा आज मार लेना है। यह बात स्त्रियों को भी समझ लेनी चाहिए। संसार में इतनी नीचता है कि कभी-कभी मनुष्य को ऐसा सिद्धान्त पकड़ना पड़ता है, जो ऊँचा नहीं है और कभी अपनी मनुष्यता का परिचय देने के लिए लड़ना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर स्त्री को उसका साथ देना चाहिए, नहीं तो वह उसे गिरा देगी। स्त्री के यह बात समझने पर उसका कर्त्तव्य महत्त्व-पूर्ण बन जाता और उसके सामने आ खड़ा होता है। मनुष्य बहुधा सन्मार्ग के संकीर्ण किनारे पर आकर विचलित हो जाता है, उस समय स्त्री ही उसे निश्चय पर लाती है।

यदि वह पतिसे शुद्ध-चरित्र है, तो वह उसे अपने गुणों से अलंकृत करेगी और यदि वह उस से नीच होगी तो पति को और नीचे गिरा देगी।

जब दोनों की आत्मायें एक सी होती हैं और दोनों उच्च

प्रकृति के होते हैं तो संसार में उनका ऐसा तेज छा जाता है कि हमें परमात्मा के अस्तित्व पर पूरा विश्वास हो जाता है। इससे हमें यह भी—यदि आजतक न हुआ हो तो—विश्वास हो जाता है कि उनका आश्चर्यमय जीवन अनादि काल से अनन्त काल तक मंगलमय और सुन्दर है; इससे हमें पता लगता है कि पति और पत्नी के आश्चर्य-पूर्ण सम्बन्ध की उत्पत्ति और भविष्य क्या है। एक का रहना दूसरे के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि एक दूसरे से अलग रहता है, यदि वे मेल के साथ नहीं रहते, तो एक भी जीवन की रमणीकता और उसकी ज्योति की पूर्णता का अनुभव नहीं कर सकता। प्रत्येक पुरुष और स्त्री को यह बात भली-भाँति देख लेनी चाहिए, उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि न मालूम किस समय, सत्यता के बलपर नहीं, किन्तु अपने कर्मचारियों के बलपर शासन करने वाला कोई छोटा-मोटा अधिकारी उनमें से किसी को भी ललकार दे। हमारे ऊपर ऐसे ही शासकों का राज्य है।

हमारे कई भाई भोग-विलास में दिन व्यतीत करते हैं और शासकों की हाँ में हाँ मिलाते हैं। ऐसे आदमी मनुष्य बन कर तंग हालत में नहीं रह सकते, वे तो बेकार रहकर मज़ा उड़ाना चाहते हैं।

ऐसे मनुष्यों के लिए श्री बर्नार्डशा ने क्या ही ठीक कहा है "उनकी आत्मा गुलाम है।" यदि हमें वीरता-पूर्ण भविष्य के लिए तैयारी करनी है, तो इस बुराई से लड़ना पड़ेगा।

यदि हम राष्ट्र की दासता को भगाना चाहते

हैं, तो पहले प्रत्येक व्यक्ति की खुशामदखोरी की आदत छुड़ानी होगी। भावी युद्ध के लिए यही हमारा शिक्षा-क्षेत्र है। हमारी ललनाओं को भी यह बात हृदय में रख लेनी चाहिए। उन महिलाओं को तो अवश्य यह बात हृदयंगम कर लेनी चाहिए जो आनन्द-पूर्ण घृणित जीवन की अपेक्षा आत्म सम्मान के साथ भूखों मरना पसंद करती हैं। इसलिए हम सब कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय भावों से पूर्ण समझ कर निवेदन करेंगे कि यदि तुम्हारे हाथ में स्त्री-शिक्षा का कार्य है, तो उन्हें बताओ कि वे दास-भाव से भरी हुई आत्मा वाले मनुष्य का तिरस्कार करें और उस ऐश्वर्य से हार्दिक घृणा करें, जो ऐसी आत्मा का मूल्य है।

[२]

मै अपने देश की वीर स्त्रियों के विषय मे कुछ लिखना चाहता हूँ। जब हम किसी महान् कार्य के लिए अपने को या दूसरों को उत्साहित करना चाहते है, तो उन वीर स्त्रियों और पुरुषों का उदाहरण देते है जिन्होंने इसी तरह की कठिनाइयाँ झेली हैं, जो शूरता के साथ युद्ध मे कूदे है और छाती दिखाते हुए लड़ाई के मैदान से बाहर हो गये है। इन सूरमाओं ने ही हमारे लिए जीवन धन्य करनेवाली बपौती छोड़ी है।

यह हमारे लिए कम लज्जा का विषय नहीं है

कि हम अपने वीर पुरुषों का इतिहास कम जानते हैं; इससे भी अधिक लज्जा का विषय यह है कि हम अपनी वीर स्त्रियों के विषय में कुछ भी नहीं जानते।

और जब कभी हम किसी की महिमा का कीर्त्तन करते हैं तो हमारा चुनाव ठीक नहीं होता × × × हमारे जीवन पर कविता ने प्रभाव डाल रक्खा है। देश-भक्ति के हित में यह प्रभाव ठीक नहीं है। हम किसी प्रेयसी की सर्वनाश की कथा सुनकर दया से पिघल जाते हैं। हम मे अपने लिए और सबके लिए सहानुभूति उमड पडती है।

भाव की लहरों में बहकर हम अपनी नसें ढीली कर देते हैं। यह करुणा हमें दुर्बल कर देने वाली है। इससे मालूम होता है कि खून के अन्दर खौलती हुई गरमाहट नहीं है, जीवन पर हमारा पूर्ण अधिकार नहीं है और हममें वह दृढ़ निश्चय नहीं है कि हम भण्डे को पकड़कर एक स्थानपर डटे रहें और युद्ध समाप्त करें।

अब समय आ गया है कि जिस पीढ़ी ने साग क्यूरान की कीर्ति के गीत सर्वत्र सुने हैं वह अब उससे भी अधिक वीर तथा सुन्दर आदर्शवाली टोन की धर्मपत्नी का गुणगान करे।

(२)

जब हम स्त्रियों के विशेषता-प्रदर्शक गुणोंपर विचार करते हैं

तो सौजन्य, कोमलता, सहानुभूति तथा करुणा के भाव ध्यान मे आते हैं। और जब किसी स्त्री मे यह गुण अपना गाढ़ा रङ्ग जमाते हैं और उनके साथ सहनशीलता, साहस एवं वीरता के मनुष्योचित गुण रहते हैं, तो ऐसी स्त्री वीर समझी जाती है। आयरिश नेता टोन की पत्नी ऐसी ही थी। हम उसकी प्रशंसा निर्भय होकर कर सकते हैं। उसकी हर तरह से परख हो चुकी और वह हर तरह से बिलकुल सत्य उतरी। अपने पति की भक्ति कर और उसे देश के कार्य मे उत्साह प्रदानकर उसने जो काम किया, उसकी महान् प्रशंसा की जानी चाहिए। यद्यपि उसका पति मारा गया और वह पति के प्रेम और उसके उत्साह-पूर्ण जीवन से वंचित रक्खी गयी, तिसपर भी उसकी सत्यता ने लोगों को आश्चर्य मे डाल दिया।

प्रश्न उठ सकता है कि टोन की जीवित अवस्था में उसकी स्त्री का पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था इसीलिए वह पतिव्रता रही। किन्तु नहीं, उसके उस प्रारम्भिक जीवन में दया-भाव प्रधान था, लेकिन बाद मे जब उस पर दुःख प ा, उसने ऐसे धैर्य का परिचय दिया कि उसकी वास्तविक महत्ता चमकने लगी। जिस प्रेम में वे दोनों बँधे हुए थे, वह साधारण नही था। इन दोनो की जीवनी पढ़ने पर स्पष्ट और सुन्दर मालूम पड़ती है। टोन धीर, सगठन-कर्त्ता, ज़बर्दस्त लड़ाका, दूरदर्शी, सोचने वाला, अदम्य उत्साही और जन्म से ही नेता था। प्रेम मे मग्न बच्चे की तरह वह प्रेम-भरी सादगी से अपनी स्त्री को लिखता है "मुझे सदा तुम्हारा और बच्चो का ही ध्यान रहता है।" इस पत्र का अन्त यो है "मेरी ओर से बच्चो का मुंह बार-बार चूम लेना। ऐ जीवनधन

और प्राणप्रिये ! भगवान् तुम्हे सदा सुखी रक्खे ।" यह आश्चर्य की बात नहीं है। जब अपने कार्य के आरम्भ में टोन अमेरिका से प्रचार-कार्य के लिए फ्रांस जाने की तैयारी कर रहा था, तो उस समय भी उसे अपने असहाय बाल-बच्चों की याद आने से कष्ट हो रहा था । उसे ख्याल आता था कि इस संकट में मेरी स्त्री क्या करेगी । क्या वह भेंट होनेपर मुझे छाती से लगाकर रोवेगी और रोते हुए बाल-बच्चो की हालत सुनायेगी और मेरी प्रतिज्ञा की बात छेड़ेगी तथा मुझे प्रेम की याद दिलाकर गिड़-गिड़ायगी कि अब देश का काम भूल जाओ ? सुनिए उस संकट के समय में अपनी स्त्री की धीरता के विषय में श्री टोन क्या लिखते हैं—

"मेरी प्रतिष्ठा और हित के लिए मेरी स्त्री का साहस और उत्साह नाम-मात्र को भी नहीं घटा था। उसने मुझसे निवेदन किया 'आप अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहिए और देश के प्रति अपने धर्म को निभाइए। आपकी अनुपस्थिति में घर का काम-काज मैं सम्हाल लूंगी। देश के काम के समय बाल-बच्चों की तथा मेरी तनिक भी चिन्ता न कीजिए। वह परमात्मा जिसने समय-असमय आश्चर्य-जनक रीति से हमारी रक्षा की है, इस दुःख में हमें न छोड़ेगा।' सच्ची स्त्री की यह अचूक वाणी है।"

जिस समय वह टोन को विदा करता है, उसका शरीर कांपना

है किन्तु आँखों से वह ज्योति निकलती है कि जिसके सामने मनुष्य भी लज्जित हो जाय। वह ज्योति उसके अद्वितीय पति टोन में ही देखी गई, किन्तु और कोई मनुष्य उसे पा नहीं सका। इस स्त्री की अटल धीरता की अग्नि-परीक्षा भीषण भविष्य में ली गई जब देश का काम नष्ट-भ्रष्ट हो गया और टोन को अपने प्राण-अर्पण करके प्रायश्चित्त करना पड़ा। जब उसका अन्तिम समय आया और उसके भाग्य का निर्णय हो चुका था उसने अपनी स्त्री को पत्र लिखा। उसकी वीरता का इससे अधिक ओजस्वी प्रमाणपत्र और कोई नहीं हो सकता। टोन ने लिखा "हे प्राण-प्यारी! अब विदा दो। मेरे लिए यह पत्र समाप्त करना असम्भव हो गया है। मेरी (Mary) को मेरा प्रेम जताना और सबसे अधिक यह बात स्मरण रखना कि बाल-बच्चों की माँ-बाप अब तुम्हीं हो। मेरे प्रति अपने प्रेम का पक्का प्रमाण तुम इन बाल-बच्चों की शिक्षा के लिए अपनी रक्षा करके ही दे सकती हो। शक्तिमान ईश्वर तुम सबका भला करें।" क्या ही सुन्दर पत्र है! जो बात लिखी हुई है, उससे अधिक ज़ोर उस बात पर है जो नहीं कही गई है। स्त्री के लिए रोना नहीं, अपना नाम-मात्र दुःख नहीं। इस पत्र में एक स्थल पर लिखा है—"तुम्हारे और बच्चों के लिए हृदय में जो भाव उठ रहे हैं, शब्द उन्हें प्रकट नहीं कर सकते। इसलिए यह चेष्टा न करूँगा। किसी प्रकार के दुखड़े का रोना तुम्हारी और मेरी वीरता में बट्टा लगाता है।" इसीलिए तो टोन की स्त्री ने अपने कष्टमय जीवन में इस दारुण परीक्षा का शान्त चित्त से सामना किया। टोन का अपनी स्त्री के प्रति विश्वास बतलाता है कि यह वीर स्त्री

देखने के लिए दौड़ पड़ती थीं और जब देखती थीं कि उनके पति, पुत्र और भाई लापता हैं, तो आनन्द से कहती थीं 'उसने अपने देश के लिए प्राण दिये हैं; वह प्रजातन्त्र के लिए मरा है।" जब फ्रांस में प्रजातन्त्र का पतन हुआ, नेपोलियन सम्राट् बना और इस हलचल मे उसके स्वत्वों पर ध्यान न दिया गया, तो वह स्वयं अपने पुत्र को लेकर नेपोलियन के पास गई और टोन की सेवाओ का स्मरण दिलाते हुए उससे प्रार्थना की कि वह उसे पल्टन मे भर्ती कर ले। सब को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नेपोलियन ने उसकी बात बड़े आदर से सुनी और तत्काल उसे स्वीकार कर लिया। उसने वह प्रार्थना अपने बचे हुए एक-मात्र पुत्र के लिए की थी। उसके दो बच्चे पहले ही मर चुके थे। लड़की की मृत्यु का दृश्य बड़ा हृदय-विदारक था। अब वह एक लड़के को लेकर खड़ी थी। किसी बच्चों का संरक्षण इतने अधिक अनुराग से न किया गया होगा और न किसी को गर्व के साथ जीवन आरम्भ करने का ऐसा पथ सुझाया गया होगा। इस तत्व को भली भाँति समझने के लिए इस बालक के स्मृति-पत्र पढ़ने चाहिएँ और स्थान-स्थान पर इस बात पर विचार करना चाहिए कि इस रमणी ने अपने पति को कैसी वीरता के साथ वचन दिया था कि वह अपने बच्चों का उत्तर-दायित्व ग्रहण करती है और अपने घोर कष्ट के दिनों मे उसे अपने वचनो का किस प्रकार अक्षरशः पालन करना पड़ा। वह सत्य पर दृढ़ रही। उसकी शक्ति और भक्ति की उपमा नहीं मिलती। उसके दो बच्चे रोग से काल के ग्रास बन गये थे और बचे हुए लडके को उसने किस प्रकार रात-दिन की हिफाजत से

यम के घर से लौटाया था। इस लड़के को उसने किस प्रकार शिक्षा दिलाई और किस प्रेम-पूर्ण गर्व के साथ उसे सैनिक कार्य मे नियोजित किया।

एक बार किसी नीच-हृदय पुरुष ने इशारे से कहा, तुम रुपया मागने को हमारे पास आई हो। उस समय उसके हृदय से वीरोचित अभिमान के ये शब्द निकले कि मैंने इतने संकट झेले किन्तु दूसरे के आगे हाथ फैलाना कभी नहीं सीखा। अपने सब कष्टो में वह तेजस्वी, साहसी, शिष्टाचारी और अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा सजग रहती थी। समय पड़ने पर वह कभी अपने कर्त्तव्य से च्युत न हुई। उसने अपना धर्म पूरा-पूरा निबाहा। वर्षों बाद फिर जब वह अपने लड़के को सेना में भर्ती करने को भेजती है, तो उसी प्रकार कॉंप-कॉंप कर उसे विदा करती है जिस प्रकार कुछ साल पहले उसने अपने पति को आश्वासन देकर देश के प्रति धर्म निबाहने भेजा था। आज वह अपने इकलौते बेटे से अलग हो रही है। उसका हृदय उसके शब्दों में ही देख लीजिए—"आज तक मैंने अपने को यह सोचने का अवसर भी नहीं दिया था कि मेरा विलियम मेरा है, मेरा इकलौता बेटा है। मैं यही सोचती रही कि टोन का लड़का मुझे सौंपा गया है, किन्तु विदाई के समय प्रकृति ने अपना जोर दिखाया। मैं एक खेत में बैठ गई। मेरे सामने सफेद और लम्बी सड़क थी। मैं टकटक-भर अपने लड़के ही लड़के को देखती थी। मेरी विचार-शक्ति लुप्त हो गई। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था कि जीवन भर की सब यन्त्रणायें एक साथ मेरे ऊपर आ टूटी हैं और मुझे घेरे खड़ी हैं। मुझे उस वक्त एक जबर्दस्त चाह हुई और वह

चाह सदा के लिए आँखें बन्द कर देने की थी। मैं उसी हालत में रही, मुझे यह नहीं सूझ रहा था कि घर को भी लौटना है। इतने में एक छोटी लवा मेरे पास की झाड़ी से उड़ी और मेरे सर के ऊपर चक्कर काटने लगी। ओह! वह हवा में कैसा सुन्दर और प्रफुल्लित करने वाला गान गा रही थी। उसकी ध्वनि ने मुझे शान्ति दी और बेहोशी से जगाया। मेरे हृदय से आवाज़ आई, इसे टोन ने तेरे पास भेजा है। मैं अपने निर्जन घर को वापस चली आई।" यह दृश्य है जो हमारे दिल को मोम बना देता है। कैसी पतिव्रता स्त्री थी! धूप में बिलकुल अकेली सर झुकाये घास पर बैठी हुई है; लवा का गान सुनकर समझती है कि पति ने मीठा आश्वासन देने के लिए उसे भेजा है। ऐसी स्त्री को देखकर हममें कमज़ोरी पैदा करने वाले भाव उत्पन्न नहीं होते। हमे मातृभूमि और उसके निवासियों पर गर्व होता है; हमारे विचार दृढ़ और निश्चित बन जाते हैं; हमारा हृदय कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होने की पुकार मचाता है; हम रोते, गिड़गिड़ाते नहीं हैं किन्तु देश का हित करने के लिए हमारा ख़ून खौलने लगता है।

(४)

नारी-धर्म का यह वीरता-पूर्ण उदाहरण हमारी स्त्रियों ही के नहीं किन्तु हमारे पुरुषों के सामने भी रक्खा जाना चाहिए। पाठकों को इससे मालूम होगा कि **देश-भक्ति हृदय के कोमल भावों का नाश नहीं करती बल्कि उलटा उन्हें जगाती है और विस्तृत करती है।** हमको ऐसा विचा-

रने का अभ्यास पड़ गया है कि सिपाही में प्रेम और करुणा का भाव नहीं रहता। हम समझते हैं कि यह गुण उसकी दृढ़ता नष्ट कर देंगे और उसका काम चौपट कर देंगे। किन्तु हमें ध्यान रहना चाहिए, कि मनुष्योचित गुणों का अभाव हमारे सब कार्य निरर्थक कर देता है। जबतक हम सयाने नहीं होते और हमारी नसों में कविता का रस नहीं बहता तबतक तो हम किसी भी सिद्धान्त के अनुसार काम करने को तैयार रहते हैं; किन्तु जब प्रकृति हमारे ऊपर अपना राज्य जमाती है तो कट्टर सिद्धान्तवादी किसी को अपने वश में रख नहीं सकता। हमें यह बात याद रखनी चाहिए और मनुष्य बनना चाहिए। हम शब्दों में नहीं तो कार्यत. कह रहे हैं—"आयर्लैण्ड के लिए कृपया घर-गृहस्थी के जञ्जाल में मत फँसिये।" इस दृष्टि से तो हम यह भी कह सकते हैं—"आयर्लैण्ड के लिए कृपया अपनी रगों में रक्त का प्रवाह रोक लीजिए।" ऐसा होना असम्भव है। यदि सम्भव भी होता तो यह घृणित बात होती। **स्त्री और पुरुष को कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपने जीवन में महत्वपूर्ण और स्वच्छ धर्म्म का पालन करना होता है।** इसी धर्म के स्थान पर ऐसा प्रकृति विरुद्ध जीवन व्यतीत करना जिसमें न तो तपोवन के एकान्त वास का ही आनन्द मिले और न संसार में ही हम कुछ कर सकें विकट और बुरा है।

हमारा सौभाग्य है कि टोन की स्त्री आयर्लैंड में पैदा हुई। इस उदाहरण से कोई भी स्त्री सीख सकती है कि बहादुर से बहादुर आदमी की टक्कर का कैसे बना जाता है। **मनुष्य को**

इस दृष्टान्त से सबक लेना चाहिए कि स्त्री और पुत्र भले ही कष्ट पावें किन्तु उन्हें गुलाम और कायर बनाना पाप है। संसार मे ऐसे निष्कपट-हृदय मनुष्य भी वर्त्तमान हैं जो स्वयं अपनी देह मे सब कष्ट सहने को तैयार है, किन्तु वे अपने कुटुम्बियो का कष्ट नहीं देख सकते। उनको परिवार का स्नेह जकड़ लेता है और पतन की ओर घसीट ले जाता है। ऐसा कभी न होना चाहिए। यदि कर्तव्य पालने से पुत्र और कलत्रपर आपत्ति आने का अन्देशा हो और इसीलिए उसे ताक़पर रख देना पडे तो स्त्री, धर्मपत्नी नहीं, भार बन जाती है और सन्तान पतित जीव बन जाती है। जो त्रिशंकु की तरह अधर लटका हुआ है, जो सर ऊँचा नहीं उठा सकता वह भगवान् तथा मनुष्य के प्रति अपना कर्तव्य निबाहने के अयोग्य है।

मनुष्य को घबराना न चाहिए कि उसके प्रेमियों की अग्नि-परीक्षा हो रही है। उसे शक्तिभर ऐसा बनने की चेष्टा करनी चाहिए कि वे जाँच में पक्के उतर आये।

इसके बाद सत्य की महिमा और सत्याग्रही स्वभाव की सत्यता के भरोसे पर अपने प्रेमियो की विजय छोड़ देनी चाहिए। ऐसे पुरुष तथा ऐसे प्रेमियो को परिणाम मे वह पुरस्कार मिलता है जिसका उन्हे स्वप्न मे भी ध्यान न था।

सुनिए, जिस युद्ध में इतनी परीक्षा ली जा रही है! वह उनके जीवन मे उन नये और स्वच्छ भावो को लावेगा जिनका समाज के समागम में उन्हें आजतक पता न चला था। इससे उन्हे

अधिक सहानुभूति, पर—दुःखानुभव, विनय और शक्ति प्राप्त होगी। इस परीक्षा से जीवन के नये पर्दे खुलेंगे और समाज के प्रति हृदय में उदार विचार पैदा होंगे। सारांश, इस यन्त्रणामय परीक्षा द्वारा ही जीवन में ज्ञान, करुणा और वीरता के अपूर्व सम्मिश्रण का आनन्द मिलता है और ऐसा जीवन, चाहे इसमें कितने ही दोष, लड़ाइयाँ, झगड़े और यातनायें क्यों न हों, सदा श्रेष्ठ और मनोहर है।

नवम परिच्छेद
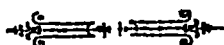
साम्राज्यवाद

(१)

आयर्लैण्ड को होम-रूल देने का वचन मिलते ही तुरन्त साम्राज्य के कई नये पक्षपाती दिखाई देने लगे हैं। सम्भव है इससे भी भलाई निकल पड़े। इससे हमको साम्राज्य के पक्ष-पातियो के साथ पहले की अपेक्षा अधिक निकट जाकर टक्कर लेने का मौक़ा मिल जायगा। आजतक हमारा युद्ध अस्पष्ट सिद्धान्तों के ऊपर रहा है। होमरूल के लिए लड़नेवाले साम्राज्य-वादियों ने शब्द-जाल के भीतर यह बात छिपाई कि वे साम्राज्य के लिए लड़ रहे हैं। अब होमरूल प्राप्त होने ही को है। इससे हमे कम-से-कम एक लाभ होगा। गन्दी हवा साफ़ हो जायगी। यह बात निश्चित रूपसे तय हो जायगी कि हम राष्ट्र के लिए लडें या साम्राज्य के लिए। राष्ट्र के पक्ष मे हमे जो कुछ कहना है आगे कहेगे, किन्तु इस समय हम साम्राज्य-वाद पर लिखेंगे, क्योंकि हम साम्राज्य-वादियो की तरफ से झूठी और पाखण्ड-पूर्ण बातें सुन रहे है। हम साम्राज्यवाद की जाँच करेंगे और इस का अत्याचार, निठुरता और पाखण्ड दिखायँगे। साथ-साथ यह भी दिखायँगे कि साम्राज्यवादियो को अपने ऊपर आक्रमण करने

का छोटे-से-छोटा मौका देना कितना भयंकर है? साम्राज्य को हम जितना जानते हैं और उसके साथ सम्बन्ध रखने से हमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उससे हम कह सकते हैं कि साम्राज्य बुरी चीज़ है और हमें स्वयं ही उससे मुक्त होना और आगे को उस के जाल में फँसने से न केवल बचना ही चाहिए, बल्कि संसार के हर किसी ऐसे राष्ट्र का उत्साह और आशा बढ़ानी चाहिए, जो साम्राज्य के विरुद्ध लड रहा हो।

[२]

मैकियावेली एक स्पष्ट लेखक हुआ है। उसने साम्राज्यवाद पर एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक की पड़ताल करने से साम्राज्यवाद की माया कट जायगी। हाँ, आँखें होते हुए जो न देखना चाहे, उसे कोई नहीं दिखला सकता। साम्राज्य के कई पक्षपाती मैकियावेली की दुष्टतापूर्ण बातों को पढ़कर एकदम घबरा-से जाते हैं। इस घबराहट से हमें भ्रम में न पड़ना चाहिए। जिन लोगों ने मैकियावेली की "राजकुमार" नामक पुस्तक नहीं पढ़ी है वे निम्नलिखित अवतरणों को ध्यान से पढ़ें और देखें कि ये बातें आयर्लैण्ड मे अंग्रेजो के शासन पर किस प्रकार घट जाती हैं। इन बातों को पढ़कर वे समझें कि साम्राज्य स्वयं ही बुरा है, हर तरह से दुष्टता-पूर्ण है, उसका पग-पग पर विरोध किया जाना चाहिए, उससे निरन्तर युद्ध जारी रहना चाहिए और उत्साह के साथ तथा बिना हीले-हवाले के उसका त्याग करना चाहिए। हम से, शैतान, उसकी शान और उसके कामों से दूर रहने के लिए बचपन से ही कहा जाता है। वही बात यहाँ भी लागू है। पहले विदेशी शासक के आक्रमण की बात सोचिए। मैकियावेली कहता

है—"आक्रमण की साधारण रीति यह है, 'ज्यों ही विदेशी राजा किसी प्रदेश पर आक्रमण करता है, तो वहाँ के दुर्बल और कृतघ्न निवासी उसके साथ मिल जाते हैं। कारण यह है कि उनमें अपने वर्तमान प्रभुओ के प्रति ईर्ष्या और द्वेष का भाव रहता है। ऐसे छोटे-छोटे रजवाड़ों को अपनी ओर करने के लिए कोई कष्ट उठा न रखना चाहिए। वश में आते ही ये लोग तुरंत आक्रमणकारी के साथ मिलकर एक हो जाते हैं। विजयी राजा को विशेष ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि ये कभी शक्तिशाली न बन जायँ। इनके हाथ मे विशेष सत्ता भी न दी जानी चाहिए ऐसा करने से विजयी राजा बड़ी आसानी के साथ अपने सैन्य-बल और अपनी ओर किये हुए इन राजाओ और रजवाड़ों की सहायता से अपने पड़ोसियो की शक्ति कम कर सकता है और विजित प्रदेश मे एक-छत्र राज्य चला सकता है।" यह देश को फोड़कर उसपर शासन करने की पुरानी नीति है।

किसी देश मे अपना प्रवेश करने के लिए कोई बहाना चाहिए। मैकियावेली ने एक राजा की प्रशंसा की है, जो सदा धर्म का बहाना निकाला करता था। किसी देश पर अधिकार हो चुकने पर उग्र नीति से काम लिया जाना चाहिए। मैकियावेली कहता है—"जो पशुबल का योग करके किसी राष्ट्र का शासन अपने हाथ में ले लेता है, उसे वे सब निष्ठुरतायें काम में लानी चाहिएँ जो तुरंत फलदायी हों।" यह लेखक आगे चलकर लिखता है—"यदि राजा क्रूरता की सहायता से प्रजा को वश मे रखता है, तो उसे बदनामी की पर्वा न करनी चाहिए, क्योंकि जो राजा एक स्वाधीन देश को जीतता है और उसे नष्ट-भ्रष्ट नहीं करता वह

बड़ी भारी भूल करता है और उसे अपने नाश की प्रतीक्षा करनी चाहिए। कारण यह है कि जब वहां के निवासी बगावत करने को तैयार होते हैं तो सदा स्वाधीनता और अपने पूर्व-पुरुषों-द्वारा बनाये हुए कानूनों का नाम लेते हैं। इस विप्लव को अधिक समय का शासन वा सभ्य व्यवहार शान्त नहीं कर सकता।" यदि राजा देश को भली-भाँति न उजाड़ सके तो, उसे राय दी गई है कि वह चापलूसी और रियायतों से काम ले। "या तो प्रजा की चापलूसी की जाय, उसपर रियायतों की बौछार की जाय, नहीं तो वह भली-भाँति तबाह कर दी जाय।" इस वाक्य से हमें घूस और उपाधियों (टाइटलों) का स्मरण हो आता है। और सुनिए "जो प्रदेश प्राचीनकाल से स्वाधीन रहा हो उसे अधीन रखने का सबसे सहज तरीका यह है कि वहीं के नागरिक नौकर रक्खे जायँ।' यह वाक्य देखकर हमें बड़े-बड़े ओहदों पर मरने वालों दरबारों और राजभक्तों के अभिनन्दनपत्रों की याद आती है। विजय को स्थायी बनाने के लिए लेखक बतलाता है—"जब एक राजा नई रियासत जीतता है और उसे अपने राज्य में मिला लेता है, तो उसके लिए यह आवश्यक है कि प्रजा को नि:शस्त्र कर दे। केवल उन्हें हथियार रखने दे जो विजय के समय उसकी तरफ़ आ गये थे। किन्तु धीरे-धीरे उन्हें भी निकम्मा बना देना चाहिए और उनको आलस्य तथा क्लीवता की उस हालत में डाल देना चाहिए कि कुछ समय बाद उसकी सारी शक्ति अपनी फ़ौज के भरोसे ही खड़ी रह सके।" यह बात हमें आर्मस एक्ट (हथियार न रखने के क़ानून) और अपने निहत्थे लोगों का स्मरण कराती है। किन्तु यह सम्मति देने पर भी कि आधी प्रजा नि:शस्त्र

कर दी जाय और आधी उपाधि, नौकरी आदि से अपने वश में कर ली जाय मैकियावेली कहता है कि विजयी राजा को इन दोनों में से एक को भी अपना विश्वासपात्र नहीं बनाना चाहिए। उसके शब्द पढ़िए—"बुद्धिमान् और नीतिज्ञ राजा को चाहिए कि वह अपना वचन पूरा करने की चिन्ता न करे। जब कि ऐसा करने से उसका अहित होता हो और जिस कारण से वचन दिया गया था वह दूर हो गया हो।" इस विषय में कोई ग़लती न हो इसलिए उक्त लेखक अधिक स्पष्ट भाषा में लिखता है—"अपने भावों को छिपाना और सफलता-पूर्वक मन मे कुछ तथा बाहर कुछ दिखाना बड़े महत्त्व की बात है।" इन वाक्यों से तोड़ी हुई सन्धियाँ और असंख्य विश्वासघात आँखो के सामने आ जाते हैं।

दुनिया की नज़र में प्रतिष्ठित बना रहना अच्छा है किन्तु मैकियावेली इस विषय पर भी राजा को सतर्क करता है–"सज्जन, दयालु, शिष्टाचारी, धार्मिक तथा निष्कपट-सा बना रहना, सम्मान प्राप्त करना है, किन्तु तुम्हारा मन इतना ठीक और अभ्यस्त रहना चाहिए कि अवसर पड़ने पर उसके सोलहो आने विरुद्ध कार्य कर सको।" जो भद्र पुरुष इन बातों को पढ़कर दुविधा मे पड़ गया है, वह ध्यान से सुने—"यदि इन दोषो के कारण उसका नाम बदनाम होता है। तो उसे तनिक चिन्ता न करनी चाहिए। क्योंकि ऐसा न करने से उसका राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता।"

यहाँ तक हमने प्रसिद्ध राजनैतिक लेखक मैकियावेली के सिद्धान्त लिखे है। इन सिद्धान्तो की नीति-भ्रष्टता देखकर हमारे

वे साम्राज्यवादी दंग रह जाते हैं, जिन्होंने जंगली और अर्द्ध-सभ्य जातियों को सभ्य बनाने का बीड़ा उठाया है। हम तो अब अपनी आँखें खोल रहे हैं और देख रहे हैं कि दोनों नीति-भ्रष्ट और दुरंगे हैं। हमें तो मैकियावेली की पुस्तक की बातें ठीक ऐसी लगती हैं मानों किसी विवेचक ने आयर्लैण्ड में अंग्रेजों का शासन देखकर उसकी विशेषताओं का भली भाँति निरीक्षण किया है और उनसे ये सिद्धान्त निकाले हैं। मैकियावेली ने अपनी पुस्तक में जो पोल खोली है, उसके लिए हमें उसे धन्यवाद देना चाहिए। उसने राजा को जो सम्मति दी है, वह उसके युग के डाकुओं की कलई खोल देती है और हमें अपने समय के साम्राज्य की बुराइयाँ दिखाने में सहायता पहुँचाती है।

]

इस बात से हमें शिक्षा लेनी चाहिए कि ४०० वर्ष पहले इटली में लिखा हुआ यह ग्रन्थ आज भी पूरी तरह से उपयोगी है। साम्राज्यवादियों का यह वास्तविक चित्र है, इसलिए हमें साम्राज्य से कोई वास्ता न रखना चाहिए। यह कहा जायगा कि अब आगे हम पर पुराने हथकण्डे काम में न लाये जायँगे। साम्राज्यवादियों को हम बता देना चाहते हैं कि वे इस नई मित्रता से बल पाकर दूसरे देशों पर यह चालबाज़ियाँ चलेंगे। यह भी हमारे नाम पर कलंक है। हम किसी देश को अपने अधीन नहीं रखना चाहते। हम उन्हें साम्राज्य का विरोध करने के लिए उत्साहित करेंगे। यदि उसके लिए हमें भविष्य में लड़ना पड़ेगा तो यह स्वयं यथेष्ट प्रोत्साहन है।

हमारा दमन नीचता के साथ होने से दूना कड़ुवा बन गया है। **ज़बर्दस्त के अत्याचार से हमारा रोष प्रचण्ड हो उठता है, किन्तु नीच का अत्याचार असह्य हो जाता है।** क्रोमवेल का अत्याचार आसानी से भूला जा सकता है, किन्तु मेकाले की पाखण्डपूर्ण बाते नहीं। जब हम मेकाले की कुछ पंक्तियाँ पढ़ते हैं, तो बदन मे आग-सी लग जाती है। और यह आग तभी बुझेगी, जब हम विरोध को बिलकुल मिटा देंगे। मिल्टन पर लेख लिखता हुआ मेकाले इंगलैण्ड की राज्यक्रान्ति पर बड़ी-बड़ी बातें छाँट गया है और उसकी विशेषता बतलाता है "साम्राज्य का एक भाग ऐसी दु खदायी स्थिति में था, कि उस समय हमें सुखी बनाने के लिए उसकी महान् यन्त्रणा आवश्यक थी और हमे अपने को स्वाधीन बनाने के लिए उसे गुलाम बनाना आवश्यक था।" संसार मे शायद ही किसी ने ऐसी बेशर्म बात कही हो।

भूलिएगा मत कि यह सिद्धान्त साम्राज्य के 'बड़े साझीदार' का है। यदि मेकाले हमारा गला घोटने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता और भगवान् को धन्यवाद देते हुए क्रोमवेल के समान हमारा गला घोट देता, तो बाद की पीढ़ियाँ आग बबूला हो उठती; किन्तु मेकाले के भाव जहर मे कड़ुवापन हैं। लीजिए, और सुनिए! मेकाले मैकियावेली की पुस्तक पढ़कर अवाक् रह गया था। मैकियावेली के विषय में आप लिखते हैं "जिस पुरुष को इटली के इतिहास और साहित्य से परिचय न हो उसके लिए यह असम्भव बात है कि उस पुस्तक को जिसने मैकियावेली के नाम पर

कलंक का टीका लगाया है बिना घोर घृणा और आश्चर्य के पढ़ सके। दुष्टता का बिलकुल नग्न लेकिन निर्लज्ज चित्र है। ऐसी शांत, विचार-पूर्ण और वैज्ञानिक निष्ठुर क्रूरता का वर्णन नीच-से-नीच प्रकृति का पुरुष भी नहीं कर सकता। मालूम पड़ता है कि यह किसी नर-पिशाच ने लिखा है।" किन्तु यह प्रबन्ध साम्राज्यवाद पर महत्व-पूर्ण उज्ज्वल प्रकाश डालता है। मेकाले मैकियावेली के विषय में लिखता है कि "उसका एक-मात्र दोष यह था कि उसने उस समय के कुछ प्रचलित सिद्धान्तों को स्वीकार कर उन्हें उज्ज्वल और अन्य लेखों से अधिक ओजस्वी भाषा मे लिखा।"

यहां सत्य बात स्वयं प्रकट हो गई, यद्यपि मेकाले का यह इरादा नहीं था। क्या मजे की बात है! मैकियावेली का अपराध यह है कि उसने ज्वलन्त और ओजस्वी भाषा में उनका निरूपण किया है। यह कोई दोष नहीं है कि उसने इन बुरे विचारों को अपने हृदय में स्थान दिया। बात यह है कि दिल में चाहे कुछ सोचिए मगर ढोंग दूसरा रचिए।

मेकाले की घोर घृणा और आश्चर्य देखिए और साथ-साथ उसी प्रबन्ध की यह बात पढ़िये—"जिस पुरुष ने संसार का अनुभव प्राप्त किया है वह जानता है कि साधारण सिद्धान्त बिलकुल निकम्मी चीज है। यदि वह नीतिमूलक और बिलकुल सत्य है तो अनाथ बालकों को सिखलाने योग्य बात है, और कुछ नहीं।" पाठक, समझे? नीतिमूलक और सत्य बात को अनाथालय में शरण मिली। कई लोग कहेंगे, यह व्यंग्य है। हमें इस पर विश्वास नहीं। किन्तु यदि मान भी लिया जाय तो ऐसे

व्यंग्य में हृदय उतना ही स्पष्ट प्रतीत होता है जितना गम्भीर प्रलाप के कई खंड के ग्रन्थ को पढ़कर नहीं हो सकता। हमें तो यह बात अंग्रेज़ शासन की पहचान कराने वाली नीति-सी मालूम पड़ती है। अंग्रेज़ जाति को इस बात का अभ्यास पड़ गया है, वह यह नीति काम में लाती है और इसके साथ उसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। किन्तु आयरिश जाति को इस नीति से पाला नहीं पड़ा है, न पड़ता है और न पड़ेगा। हम इससे कदापि सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते। पुराने अत्याचार ज्यों-ज्यों अधिकाधिक पुराने होते जाते हैं हमारा क्रोध शांत होता जाता है; किन्तु पुरानी कपटी बातों को फिर-फिर दोहराना, इतना ही नहीं, किन्तु यह चेष्टा करना कि उनकी सत्यता हम स्वीकार करें, हमारी सारी देह में आग भड़का देता है। यह आग इतनी जबर्दस्त होती जाती है कि अंग्रेज़ जाति के साथ सम्बन्ध टूटने पर ही यह भी बुझेगी।

(४)

मेकाले तो आयर्लैण्ड वालों को धोखे में नहीं डाल सकता, किन्तु हमें भय है मिल और बर्नार्डशा जैसे लेखकों से। बहुधा ऐसा होता है कि जब कभी हम किसी निष्कपट आदमी की बातों से झमेले में पड़ जाते हैं और हमें उसकी प्रकृति का परिचय नहीं मिलता तो हमारा विवेक हमें ढोंग से बचा देता है और हृदय मे उसके प्रति घृणा पैदा हो जाती है। जब आक्रमणकारी देश आक्रमण का मौक़ा खोजता है तो वह पहले कोई बहाना ढूँढता है। हमको खतरा इसमे है कि लोग आक्रमणकारी देश को बहाने का मोका दे देते हैं। मिल ने जो यह वाक्य लिखा है वही काफी बहाना है। "स्वेच्छाचारी शासन असभ्य समाजों के

लिए उचित और न्याय-संगत है। हां, उद्देश्य यह होना चाहिए कि उनको उन्नत किया जाय।"

श्रीशा साहब अपनी एक पुस्तक की भूमिका मे लिखते हैं—"मैं तिब्बत-निवासियों ,को मशीन के भीतर दबाकर पीस डालूँ यदि वे मुझे सर्वजातीय स्वत्व देने से इन्कार करें।" अपने राज्य के भीतर किसी स्वत्व को बल-पूर्वक प्रचलित करना तो हमारे अधिकार में हुआ, किन्तु "बर्बर" कह कर दूसरे लोगों के ऊपर उसका प्रयोग करना सरासर दूसरी बात है। बर्नार्डशा मिश्र में जो अत्याचार हुआ था उसकी पोल जीती-जागती और चुभने वाली भाषा में भले ही खोले; किन्तु जिन्हें दूसरे देशों पर हमला करना है उनका "तिब्बत को पीस डालने" वाले वाक्यांश से काम सध जाता है। स्वाधीनता का ऐसा पक्षपाती और प्रसिद्ध लेखक जब लिखता है—"मैं मोरक्को, ट्रिपोली, साइबेरिया और आफ्रिका के लोगों को 'सभ्य' बनाने के लिए फ्रांस, इटली, रूस, जर्मनी और इंग्लैण्ड के साथ सहयोग करने को तैयार हूँ।" तो मिश्र के अत्याचार के ऊपर उसने जो गाली बरसाई है वह व्यर्थ हो जाती है। अत्याचार हो चुकने पर वे भले ही रो लें किन्तु बिना क्रूरता किये वे लोग "सभ्य" नहीं बन सकते।

बर्नार्डशा के इन वाक्यों को पढ़कर और साथ ही साम्राज्य के विरुद्ध उसके जो सच्चे उद्गार हैं उन्हें देखकर साम्राज्य के हिमायती मन ही-मन हँसते होंगे। साम्राज्य को बुरा बतलाते हुए शा लिखते हैं—"यह नाम ऐसा है कि जिस आदमी के हृदय में अपनी मातृ-भूमि के प्रति पवित्र भाव है और जो पुरुष दूसरों के

हृदयों मे इन भावों को पवित्र और अविच्छेद्य समझता है इस नान को सुन कर अत्यन्त घृणा के साथ इस पर लानत भेजेगा।" अपनी "प्रतिनिधि शासन" नामक पुस्तक में जब मिल लिखता है कि "अंग्रेज एक ऐसी जाति है जो स्वतन्त्रता को समझती है। भले ही इसने भूतकाल मे भूलें की हो, किन्तु अब इस जाति ने विदेशियों के साथ व्यवहार करने में अन्य जातियों से बहुत अधिक विवेक प्राप्त कर लिया है और नैतिक उन्नति की है।" यह शब्द सुन कर अंग्रेज भाई "बर्बर" जाति को सभ्य बनाने के लिए आग बढ़ते हैं, किन्तु उनके भाव मेकाले के-से रहते हैं। यह सब बातें पढ-सुन कर हमें स्वभावतः क्रोध हो आता है, साथ ही आश्चर्य होता है और हँसी भी आती है।

साम्राज्य के पक्ष में जो कुछ लिखा गया है उसे पढ़कर क्रोध आता है, घृणा पैदा होती है; किन्तु स्वाधीनता के लेखक मिल के ग्रन्थ-रत्नों मे से यह वाक्य देखकर जी खोलकर हँसे बिना नहीं रहा जाता। मिल अपनी स्वाभाविक गम्भीरता से कहते हैं— "दूसरे देशो को हड़पना ऐसी अभिलाषा है जो जातीय दृष्टि से देखने पर अंग्रेजों के लिए अस्वाभाविक है।" जब निष्कपट-हृदय अंग्रेज ऐसी बात लिख सकता है तो हम सब को होश-हवाश दुरुस्त रखना चाहिए, और जब आज कल की तरह साम्राज्य के पक्ष में अहितकर, बेढगी बातें चारों ओर से बकी जा रही हैं हमें सोचना चाहिए, इन सब बातो पर ध्यान से विचार करना चाहिए और चौकन्ना रहना चाहिए।

[५]

अब इस परिच्छेद के अन्त मे हम होमरूल-दल वालो पर

अपनी सम्मति लिखेंगे। यह भविष्यवाणी सुन कर हँसी आती है कि होमरूल मिलने पर आयर्लैण्ड साम्राज्य का भक्त रहेगा। हमें आश्चर्य है कि आयरिश लोग भी ऐसे बेवकूफ होते हैं; यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अंग्रेज लोग ऐसे सीधे-सादे होते हैं कि वे ऐसी बातों पर झट विश्वास कर लेते हैं। इतिहास और अनुभव इन बातों के विरुद्ध जाते हैं। सम्भवतः होमरूल दल के नेता समझते हैं कि दस-बीस साल में ही उनका काम पूरा हो जायगा और इसी अवधि के भीतर होमरूल प्राप्त हो जायगा। ये लोग शायद इसी काल के भीतर की बात कहते हैं।

किन्तु इस अवधि के बाद हमारी सन्तान शक्तिशाली और लड़ाकू बन जायगी और यदि हम उस समय तक न सम्हले तो वह हमारे काम के लिए तैयार हो जायगी। वर्तमान समय के लिए मैं तो यही कहूँगा कि बूढ़े कार्यकर्ताओं की सीमा हमारे लिए बस नहीं है। जो कोई आगे बढ़ने से हिचकता है उसे हमारा अर्वाचीन और प्राचीन इतिहास देखना चाहिए। दबाने और उजाड़ने की पुरानी चेष्टा विफल होनेपर हमें पुचकारने का नया प्रयत्न आरम्भ हुआ। पहले छोटी-छोटी रियासतें बख्शी गई फिर बड़ी। पहले यह समझा गया था कि कठोर शासन से होम-रूल दबोचा जायगा, फिर दया से उसके प्राण लेने की ठहरी और हमें स्थानीय स्वराज्य दिया गया। स्थानीय स्वराज्य से पूरा स्वराज्य प्राप्त करना अनिवार्य हो गया और अब जब होमरूल प्रायः प्राप्त हो गया है तो हम आगे बढ़ रहे हैं।

दशम परिच्छेद

सशस्त्र प्रतिरोध

(१)
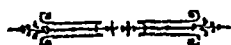
स्वाधीनता पर विचार करने से अवश्य ही उसके लिए हथियार उठाने का प्रश्न उठता है। यदि जाति के स्वत्त्वों की सत्यता और न्याय्यता प्रमाणित करना यथेष्ट होता तो संसार में अत्याचार बहुत कम रह जाता, किन्तु अत्याचारी सत्ता सत्य के प्रति अंधी हो जाती है, दलीलो से उसका दिल नहीं पसीजता, पशु-बल से इसका सामना करना पडता है। इसलिए हमें विद्रोह का नैतिक विचार करना आवश्यक है।

(२)

चिड़चिड़े, नुक्ताचीन और नीम हकीम खतरे जान का मसला चरितार्थ करनेवाले सज्जन सर्वत्र मिलते हैं। ऐसे आदमी आपत्ति करेंगे—"आयर्लैण्ड मे हथियार लेकर लड़ने का सवाल कैसे उठ सकता है ? यदि कोई इस प्रकार युद्ध करना चाहे तो उसे मालूम होगा कि यह बात असम्भव है, और न कोई लड़ना ही चाहता है। यदि आपको आजमाइश करनी हो तो खुद जाकर देख लीजिए।" ऐसी रूखी समालोचना बिलकुल व्यावहारिक नहीं है। ऐसी बातो की तो चर्चा भी न की जानी चाहिए,

किन्तु इससे मालूम होता है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जो तुरंत लड़कर हमारी लम्बी लड़ाई को तय कर देना चाहते हैं पर वे समझते हैं कि यह सम्भव नहीं है। व्यावहारिक बातों का विचार करने के लिए हमें कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। यद्यपि आयर्लैण्ड हारनेपर भी कई बार लड़ा है और फिर लड़ने को तैयार हो सकता है, किन्तु इस समय नीति का सहारा लेकर प्रश्न उठाया जाता है कि निःशस्त्र आयर्लैण्ड दुर्जेय इंग्लैण्ड का सामना किस प्रकार करेगा ? इंग्लैण्ड के लिए तो यह सबमें आसान लड़ाई होगी। हम जिस बातपर जोर देना चाहते हैं वह यह है—निष्क्रिय रहकर और बहाव की ओर बहते जाने से हम उस स्थिति को जा रहे हैं जहाँ इंग्लैण्ड लपेट में आ ही जायगा। हमें या तो उसके लिए लड़ना पड़ेगा या उससे साफ अलग हो जाना पड़ेगा। उसके साथ सम्बन्ध रहने से हम किसी प्रकार निरपेक्ष होकर नहीं रह सकते। इसलिए सैनिक नीति बिलकुल व्यावहारिक है। इसके अतिरिक्त हमारे लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। इंग्लैण्ड के संकट में उसकी सहायता करना उतना ही हानिकर है जितना उससे सम्बन्ध तोड़ने का दुस्साहस-पूर्ण कार्य। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्थिति आश्चर्य-जनक रूपसे बदल गई है। इंग्लैण्ड भीतर और बाहर दोनों तरफ से संकट में है। वहां हर तरह के मजूरों के झगड़े मचे हुए हैं जिनका क्या परिणाम होगा कुछ ठिकाना नहीं। एक दूसरा झगड़ा इंग्लैण्ड में ऐसा मचा हुआ है जिसके कारण इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री रूस के जार के समान सुरक्षित होकर बाहर निकलते हैं*।

* यह स्त्रियों के मताधिकार के आन्दोलन के विषय में है। अनु०

इङ्गलैण्ड में इस समय जो अशान्ति फैली हुई है उससे वहां के अधिकारियों की बुद्धि के हरण होने की सम्भावना है। इस मुसीबत मे अकेला इंगलैण्ड ही नहीं है, सब महाशक्तियों की यही हालत है। कम-से-कम यह तो बहुत सम्भव है कि घरेलू लड़ाई से ये उसी प्रकार अवाक् हो सकते हैं, जिस प्रकार बाहरी शक्ति से लड़ाई करने की आवश्यकता पड़ने पर। इन बातो का साफ शब्दों मे निचोड़ यह है—हम इस बेचैनी से दूर जाकर शान्ति से बैठे रह नहीं सकते। हमे खड़ा होना पड़ेगा और अपने देश के लिए लड़ना पड़ेगा, नहीं तो दूसरों की सहायता करनी पड़ेगी। हमें तैयार हो जाना चाहिए और अधिकारों के लिए डट जाना चाहिए। जो हो, यह बात कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि हमारे वर्तमान आन्दोलन के समय विद्रोह की नैतिक स्थिति पर विचार करना व्यावहारिक तो अवश्य है।

(३)

हमें उस अल्पमत पर विश्वास है जो हमारी इन बातो मे बुद्धिमत्ता देखता है। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि इस तर्क से जनता पर कुछ प्रभाव पड़े। हमे धीर और दृढ़-निश्चयी बनना चाहिए। हम शीघ्र धीरज खो देते हैं और जल्दबाजी में गाली-गलौज करके उन लोगों को अपने दल से अलग कर देते हैं, जो अभीतक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं और हमारे पक्ष में आ सकते हैं। बहुत सम्भव है किसी खटके या किसी निर्बलता

कल यह आन्दोलन धीमा पड़ गया है किन्तु इसका स्थान कम्युनिज़्म ने ग्रहण कर लिया है—अनुवादक।

के कारण ये भाई पिछड़ रहे हों और सत्य की स्फूर्तिदायक समीर और स्वाभाविक संयम में हमारे सच्चे, श्रेष्ठ सैनिक बन जायँ। अमेरिकन गृह-युद्ध के समय एमर्सन ने युद्ध में हत सैनिकों का स्मारक खोलते समय ऐसे वीरों का हृदय-ग्राही उल्लेख किया था। उसने एक नवयुवक का ज़िक्र किया जिसे वह जानता था। इस नवयुवक को आशङ्का थी कि मैं डरपोक हूँ। इसलिए उसने संकट में रहने का अभ्यास डाला। वह ज़बर्दस्ती संकट के स्थानों में जाया करता था और उसका सामना करता था। एमर्सन ने कहा है—"यह वीर न्यूयार्क में भर्ती हुआ, युद्धक्षेत्र में गया और जाते ही खेत रह गया।" उसने इस घटना पर जो टिप्पणी की है, वह हमारे लिए महत्वपूर्ण है। "इस भाव-पूर्ण हृदय से ही बड़े-बड़े वीर बने हैं।" हम देशभाइयों को शरीर से हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए जो कष्ट उठा रहे हैं, वही कष्ट हमें उनका चित्त दृढ बनाने के लिए भी उठाना चाहिए। हम शारीरिक शिक्षा, कवायद आदि का बड़ा ध्यान रखते हैं। यह उचित है, क्योंकि इससे हुल्लड़-शाही सुसंगठित सेना के रूप में परिणत हो जाती है और स्वावलम्बनहीनता शक्ति में बदल जाती है। हमें उन मनुष्यों के हृदयों से बड़ी सावधानी के साथ काम लेना चाहिए, जिनका अभी परीक्षा नहीं हुई है। वे दुर्बल हों, चिन्तित हों और विवेक के विषय में बारीक छान-बीन करनेवाले हों, तथापि एमर्सन के नवयुवक के समान वे लोग युद्ध-क्षेत्र की सबसे आगे खड़ी हुई पंक्ति में पहुँच सकते हैं। किन्तु उनके साथ तर्क करने में हमें धीरज से काम लेना चाहिए। उन्हें अपनी बात समझाने में हमें अपना दिमाग ठण्डा रखना चाहिए और पूरी सहानुभूति के साथ

एकादश परिच्छेद
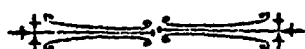
क़ानून का सच्चा अर्थ

(१)

जब हम अवैध सत्ता का विरोध करते हैं तो हम वैध सत्ता को क्यों मानते हैं और उसका क्या अर्थ समझते हैं यह बतलाकर हमें अपनी जड़ मजबूत कर लेनी चाहिए। इसलिए हमें क़ानून शब्द का अर्थ भली भाँति समझना चाहिए। क़ानून की परिभाषा यों की जा सकती है कि **क़ानून शुद्ध बुद्धि की वह आज्ञा है जिसका उद्देश्य लोक-हित है और जो शासक शक्ति द्वारा प्रचारित की जाती है।**

इस सम्बन्ध मे हम प्रामाणिक लेखकों के कुछ वाक्य उद्धृत करेंगे। 'आदमी के बनाये हुए कानून पर कानून की छाप तभी तक रहती है जबतक कि वह शुद्ध बुद्धि के अनुसार हो । इस दृष्टि से उसकी उत्पत्ति स्पष्टतया ईश्वरी नियम से है।" [एक्वीनास एथिक्स प्रथम खण्ड पृ० २७६] सेण्ट टामस ने ऐसे क़ानूनो के विषय मे लिखते हुए जिनका उद्देश्य, प्रचार अथवा स्वरूप अधार्मिक है लिखा है—"ऐसी कार्रवाइयाँ कानून नही कही जा सकती, ये तो अत्याचार की कृति हैं। क्योकि सेण्ट आगस्टीन ने लिखा है '**जो क़ानून धार्मिक नहीं है वह**

क़ानून ही नहीं है' (एक्वीनास एथिक्स, प्रथम खण्ड पृ० २९२) वालमेज़ ने लिखा है "किसी भी कानून में मुख्य बात यह रहनी चाहिए कि वह शुद्ध बुद्धि-संगत हो, वह शुद्ध बुद्धि का ही प्रकाश हो अर्थात् वह समाज में शुद्ध बुद्धि के प्रयोग का साधन हो।" (यूरोपियन सिविलिज़ेशन, अ० ५३) इसी अध्याय में बालमेज ने सेण्ट टामस की बात को पुष्ट करते हुए लिखा है "राज्य राजा के लिए नहीं होता वल्कि राजा राज्य के लिए होता है।" और उसने इसका स्वाभाविक परिणाम निकाला है कि "सब सरकारें समाज के हित के लिए स्थापित की गई हैं। चाहे किसी तरह की सरकार हो, जो उसका शासन चलाते हैं उन्हें इस बात को सदा अपनी पथ-प्रदर्शक समझनी चाहिए।" 'प्रतिनिधि-शासन' नामक अपनी पुस्तक में मिल ने लिखा है कि सरकार का एकमात्र उद्देश्य प्रजा का हित करना है। ईसा मसीह के पैदा होने से पहले प्लेटो भी ऐसी ही बात कह गया है। वह एक आदर्श नगर स्थापित करना चाहता था जिसमें सारी प्रजा अत्यन्त सुखी रहे। (रिपब्लिक, खण्ड ४) केल्डरवुडने लिखा है "नीति-पूर्ण शासन तभी न्याय-पूर्वक स्थापित किया जा सकता है जब मनुष्य के सहज कर्त्तव्य और अधिकार अविच्छेद्य समझे जायँ।" (अर्वाचीन दर्शन-शास्त्र, अध्याय ४) *

---

* हमारे यहाँ भी ऐसे वाक्य स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा.—
प्रजानां विनयाधानात् रक्षणाद् भरणादपि ।
"स पिता पितरस्तेषां केवलं जन्महेतव ।" रघुवंश ।
"राजा प्रकृतिरञ्जनात्" इत्यादि ।
मनु ने राजा के विषय में कहा है "कामात्मा विषम क्षुद्रो दंडेनैव

इस विषय पर सभी मत के और सभी समय के लोगों की एक राय रही है। जब तक यह सब बातें हमारे देश में पूरी-पूरी नहीं हो जाती हम युद्ध की दशा में हैं। जब स्वाधीन और वास्तविक आयरिश सरकार स्थापित हो जायगी तो हम उसका पूरा और हार्दिक अभिनन्दन करेंगे। उस समय क़ानून को भी जनता सहर्ष मानेगी। हम इस समय राज-सत्ता का खण्डन करने के लिए यह सब नहीं लिख रहे हैं, किन्तु हम यह बतलाना चाहते हैं कि इस समय जो लोग हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं वे अधिकारी हैं और जो झंडा हमारे देश मे फहरा रहा है वह हमारा नहीं है।

२]

विद्यमान शासकों का विरोध करने के विषय में बालमेज़ लिखता है "हमे उन सब दलीलों को चकनाचूर कर देना चाहिए जिन्हे जिस समय जो सरकार स्थापित हो उसी के अन्ध उपासक हमारे विरुद्ध पेश करते हैं।" (यूरोपियन सिविलिज़े-शन, अ० ५५) इस प्रसिद्ध स्पेनिश धर्मज्ञ से अधिक स्पष्ट बात हम नहीं लिख सकते। इन जी-हुज़ूरो की दलीलों के जवाब मे हम उसी का निम्न-लिखित लम्बा और ओजस्वी वाक्य उद्धृत करते है—"न्याय-विरुद्ध शासन कोई शासन नहीं है। जहाँ शक्ति

निहन्यते।" अर्थात् कामी, क्रोधी, नीच राजा दण्ड से ही मारा जाता है।

शुक्रनीति मे एक स्थान पर लिखा है जो राजा प्रजा का पालन नहीं करता उलटा उसे तंग करता है वह "श्वेव सोन्मादमातुर.।" पागलकुत्ते की तरह सम्मिलित प्रजा द्वारा मारा जाना चाहिए।

अनुवादक।

के भाव होते हैं वहाँ अधिकार के भाव भी होने चाहिएँ। यदि ऐसा न होगा तो शारीरिक शक्ति पशुबल मे परिणत हो जायगी।" उसने फिर लिखा है "जिस शासक ने सिर्फ तलवार के ही जोर से किसी जाति को अपने अधीन कर रक्खा है उसे अपने इस कार्य से यह अधिकार नहीं मिल जाता कि उस जाति पर उसका ही कब्ज़ा रहे। वह सरकार, जिसने घोर अन्याय से नागरिकों की सब श्रेणियों को लूट-खसोट लिया है, उनसे अनुचित कर वसूल किये हैं, न्याय अधिकार छीन लिये हैं, अपने कामों को केवल इसी कारण से न्याय-पूर्ण नहीं बतला सकती कि उसमे इन अत्याचारों को कार्य में परिणत करने की यथेष्ट शक्ति है।" इस पुस्तक मे ऐसी ही स्पष्ट और निश्चित बातें बहुत सी हैं। हमारे विरोधी लोग जो ऊँचे-ऊँचे अधिकारों पर हैं, इस विषय में जो बेहूदी बातें बकते हैं उन्हें हम सब जानते ही हैं। बाल्मेज ने इसी पुस्तक के इसी अध्याय मे ऐसे अधिकारी का एक बड़ा अच्छा उदाहरण उसकी दलीलों के उत्तर के साथ दिया है—"पालमायरा के धर्माचार्य डोन फिलिक्स आमाट ने अपने 'लड़ाका ईसाई सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ईसा मसीह ने अपने सरल और भावव्यञ्जक शब्दों में कहा है कि राजा का हक राजा को दो। इससे उसने (ईसा ने) भली-भाँति सिद्ध कर दिया है कि शासक का केवल-मात्र अस्तित्व ही यथेष्ट है कि प्रजा जबर्दस्ती उसकी आज्ञा मानने को बाध्य की जाय" यह भी पुस्तक रोम में जब्त कर ली गई थी।" बालमेज के ये अन्तिम शब्द ही इसकी स्पष्ट टिप्पणी हैं। वह आगे लिखता है "इस जब्ती का चाहे जो कारण हो, हम निस्संकोच कह सकते हैं कि ऐसे सिद्धान्तों

का प्रचार करने वाली पुस्तक के अनुसार प्रत्येक मनुष्य जो अपने अधिकारों की रक्षा करना चाहता है पोप की इस आज्ञा से सहमत होगा।" ये तो हुई पशुबल पर स्थापित सरकार के विषय की बातें। यह बलात्कार से दूसरे के अधिकार छीनती है। इसकी जड़ जम जाने से यह न्याय-संगत नहीं हो जाती। जब इसकी आज्ञाओ का उल्लंघन नही किया जाता तो कोई यह न समझे कि हम सिद्धान्त रूप से उन्हे मानते हैं—हम तो दिखलाने के लिए भी उन आज्ञाओं को स्वीकार नही कर सकते, किन्तु यह समझना चाहिए कि अभी समय नही आया है कि इनका विरोध किया जाय। यह तो लड़ाई की एक चाल है।

[३]

हम यह मानते हैं कि आयलैंण्ड मे अंग्रेजों का राज्य बलात्कार से दूसरों के स्वत्व छीन कर स्थापित किया गया है। अतः हम उसकी सत्ता स्वीकार नही करते। किन्तु यदि कोई यह युक्ति उपस्थित करे कि बलात्कार से स्थापित की हुई सत्ता यदि धीरे-धीरे प्रजा-द्वारा स्वीकृत हो जाती है तो वह एक प्रकार से न्याय-पूर्ण समझी जाती है; तो इसका मुँह-तोड़ उत्तर हमारे पास है। आयलैंण्ड के विषय में तो हम इस धारणा को निर्मूल बताते हैं। हमारी इस बात का साक्षी आयलैंण्ड का इतिहास है जो बताता है कि पशुबल पर स्थापित ब्रिटिश अधिकार के सामने हमने कभी सर नही झुकाया। किन्तु जो हमारी इस निरी अस्वीकृति को स्वीकार नहीं करते उनसे हम कह सकते है कि वह राज-सत्ता जो आरम्भ मे न्याय पर स्थापित की गई थी; जब राष्ट्र का नाश करने के लिए अपनी शक्ति का दुरुपयोग करती है

तो उसका विरोध किया जाना चाहिए। हम अब भी यह बात मान रहे हैं कि अंग्रेज सरकार प्रजा-मत के विरुद्ध पशुबल पर स्थापित है, किन्तु हम इससे भी बढ़ी-चढी हुई अन्याय की बातें सिद्ध करके सब आपत्तियो का निराकरण कर सकते हैं। इस विषय पर डॉक्टर मुरे ने भली-भाँति विचार किया है वह लिखता है "सुप्रतिष्ठित और न्याय-संगत शासन जब अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है तो उसका विरोध किया जाना चाहिए या नही; यह प्रश्न उठता है। हमारे धर्माचार्यों का बहुमत तो यह है कि ऐसे अवसर पर पशुबल के ही सहारे सामना करना धर्म-संगत है और यदि आवश्यकता पडे तो यह भी उचित है कि स्वेच्छाचारी सम्राट् या राजाओं को सिंहासन से उतार दिया जाय।* किन्तु ऐसी स्थिति तब आती है जब अन्याय चरम सीमा को पहुँच जाता है। इस स्थिति के लिए निम्न-लिखित बातें उपस्थित रहनी चाहिएँ:—

१—अत्याचार की मात्रा अति तक पहुँच जानी चाहिए अर्थात् जब वह असह्य हो जाय।

२—अत्याचार खुल्लमखुल्ला हो, कम-से-कम उनकी आँखो में जो सज्जन हों और जिनके विचार सच्चे हों।

३—अत्याचारी द्वारा किये हुए पाप उनसे बड़े हों जो उसका विरोध करने और उसे सिंहासन-च्युत करने से पैदा होंगे।

४—जब अत्याचार से छूटने का, इस चरम उपाय की शरण लेने के अतिरिक्त, और कोई मार्ग न रहे।

---

* हमारे यहां भी धर्माचार्यों ने इसी सिद्धान्त पर राजा वेन को सिंहासन से उतार दिया था। यह कथा इतिहास-प्रसिद्ध है।

५—जब धर्म की दृष्टि से विजय का निश्चय हो।

६—यह क्रान्ति ऐसी होनी चाहिए कि सारी प्रजा मिलकर इसमें भाग ले या मदद दे। यदि एक छोटा दल जनता के समूह का साथ देना अस्वीकार करे तो इससे विद्रोह धर्म-विरुद्ध नहीं हो जाता।

('धार्मिक निबन्धमाला', रिकाबीकृत 'नीति-दर्शन' का ८वाँ परिच्छेद भी पढ़ने योग्य है।)

इनमें से कुछ बातें डाक्टर मुरे ने बड़े विस्तार के साथ लिखा हैं। मैंने उनका सारांश दे दिया है। साधारण-से-साधारण आदमी भी आसानी के साथ देख सकता है कि ये बातें आयर-लैंण्ड पर किस प्रकार पूरी-पूरी घटती है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यदि हमारे नेताओ से कहा जाता कि क्रान्ति के लिए अपनी शर्तें बतलाइए, तो वे इससे और भी अधिक कड़े नियम रखते। सच तो यह है कि उनके विषय मे यह कहा जा सकता है कि वे धर्म-दृष्ट्या निश्चित विजय से भी कुछ अधिक चाहते हैं। वे सब प्रकार से पूर्ण निश्चय चाहते हैं। लड़ाई मे ऐसे पक्के निश्चय की आशा कभी नहीं की जा सकती।

[४]

जब कोई राजसत्ता अपने अन्याय के कारण मिट जाती है, तो हमे सत्य और न्याय के आधार पर नई सरकार स्थापित करने के लिए नागरिक सत्ता के मूल मे जाना चाहिए। अब यह बात कोई नही मानता है कि राजा मे ईश्वर का अंश है, किन्तु इस विषय पर पुराने ज़माने में जो वाद-विवाद हुआ, उससे शासन के

सम्बन्ध में कुछ नई बातें मालूम होती हैं। राजा की शक्ति साक्षात् ईश्वर से प्राप्त होती है, इस विषय पर लिखते हुए स्वारेज़ ने बड़ी वीरता के साथ इस बात का विरोध किया कि स्वतः राजा को जन्म से ही शासन करने का अधिकार प्राप्त है। प्रजा की सम्मति से ही सब प्रकार की राज-सत्ता उत्पन्न होती है। इसी तरह से मेलंकथान के सर्वशक्ति-सम्पन्न-राज-सत्ता के सिद्धान्त का विरोध करते हुए स्वारेज़ ने परिणाम निकाला है कि जनता को ऐसे राजा को गद्दी से उतारने का अधिकार है, जिसने अपने को उस धरोहर को सम्हाल कर रखने के अयोग्य सिद्ध कर दिया है जो प्रजा ने उसे सौंपी है।" (डिवुल्फ-कृत 'मध्यकालीन दर्शन का इतिहास', तीसरा संस्करण, पृ० ४९५)

इस अंग्रेजी सिद्धान्त का स्वारेज़ ने जो खण्डन किया है, उसे प्रसिद्ध लेखक हलम् ने स्पष्ट, संक्षिप्त और निरुत्तर बतलाया है। इन युक्तियों की सर्वत्र धाक जम गई है। अंग्रेज धर्माचार्यों की अयोग्यता सिद्ध करने के लिए हलम् ने उसके वाक्य उद्धृत किये हैं। 'यूरोप का साहित्य' नामक अपनी पुस्तक में उसने लिखा है—"अत. यह शक्ति स्वत. अपनी प्रकृति से एक मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्य-समूह के अधिकार में रहती है। यह निश्चित सिद्धान्त है। हमारे सब प्रामाण्य लेखक इसे पुष्ट कर गये हैं। सब इस बात पर सहमत हैं कि राजा को क़ानून बनाने की वही शक्ति है जो जनता ने उसे सौंपी है। इसका कारण स्पष्ट है, क्योंकि सब मनुष्य समान पैदा हुए हैं इसलिए किसी को भी किसी दूसरे आदमी या राज्य के ऊपर राजनैतिक अधिकार नहीं है। और न हम इस विषय का वस्तुत. कोई कारण दे सकते

हैं कि क्यों एक मनुष्य दूसरे के ऊपर शासन करे। हां, इस विरुद्ध कारण दे सकते हैं, ।" (हलम्-कृत 'यूरोप का साहित्य खण्ड ३ अ० ४)

डाक्टर मुरे ने अपनी पुस्तक में सर जेम्स मेकिनटॉस की तारीफ में कहा है कि अंग्रेजी सिद्धान्त का खण्डन करने वाले लेखकों मे वह सब से योग्य हैं। देखिए, मेकिनटोस क्या कहता है—"पर-आज्ञा-पालन को बिना अपवाद के धर्म बतला देना बेहूदगी है।" डाक्टर मुरे ने अपने 'मुख्य शासन-शक्ति का विरोध' शीर्षक प्रबन्ध के अन्त मे मेकिनटोस का एक लम्बा-चौडा अवतरण उद्धृत किया है और उसकी महत्ता तथा बुद्धिमत्ता की बड़ी प्रशसा की है। इस अवतरण के अधिकांश में लिखा गया है कि विद्रोह को सफल करने के लिए कितनी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है और उन घोर बुराइयों पर भी जोर दिया गया है जो असफलता से पैदा होती हैं। यहाँ मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें मुझे अधिक कष्ट बुराइयो को खोलने मे हुआ है, छिपाने में नहीं। किन्तु जब विद्रोह अनिवार्य और आवश्यक हो जाता है तो सब को डाक्टर मुरे के उद्धृत किये हुए इस वाक्य का अनुमोदन करना चाहिए—"वह विद्रोह, जो दमन के कारण आवश्यक हो जाता है और जिसके कारणों पर विचार करने से अधिक सम्भावना यह हो जाती है कि उसका अन्त अच्छा होगा, एक सार्वजनिक पुण्य का काम है। उसको संकट चारो ओर से इस प्रकार घेरे रहते हैं कि उसके संचालक प्रशंसा के योग्य समझे जाने चाहिएँ।" जब क्रान्ति सफल हो जाती है, तो जनता पर यह

भार पड़ता है और उनका यह अधिकार रहता है कि वह नई सरकार स्थापित करे।

[५]

इन सब का निचोड़ यह निकला कि वही सरकार न्याय-संगत है, जो न्याय पर स्थापित की गई हो और सर्व-साधारण के हित के लिए हो। पशुबल पर स्थापित शासन का विरोध किया ही नहीं जाता, बल्कि किया जाना भी चाहिए। वह राज-सत्ता जो आरम्भ में नियमानुकूल थी, जब धीरे-धीरे अत्याचारी बन जाती है तो उसका विरोध करना चाहिए और उसे उलट देना चाहिए। और अन्तिम बात यह है कि जब अपनी शक्ति के दुरुपयोग या अत्याचार के कारण एक विशेष शासन का अस्तित्व नहीं रहता, तो हमें वास्तविक राज-सत्ता का पुनरुद्धार करना चाहिए। कभी-कभी कुछ लोग बिना समझे-बूझे कह देते हैं "स्वतन्त्रता अराजकता से प्राप्त होती है।" किन्तु यह घोर हानिकर सिद्धान्त है। इससे अधिक सत्य तो यह है कि अराजकता से निश्चय ही अत्याचार की उत्पत्ति होती है। अराजकता में जनता को दबाने के लिए कोई-न-कोई अत्याचारी शासक निकल आता है, किन्तु जब दृढ़-प्रतिज्ञ और संयमी जनता स्वेच्छाचार और अराजकता नहीं पर स्वाधीनता प्राप्त करने का निश्चय कर लेती है तो वह प्राकृतिक नियम के अनुसार काम करती है। सेण्ट टामस ने यह सिद्धान्त भली-भाँति समझा रक्खा है और टर्नर ने अपनी पुस्तक 'दर्शनशास्त्र का इतिहास' में इसे उद्धृत किया है—"अत्याचारी शासक की प्रजा जो सुख-शान्ति चाहती है, उसे प्राप्त करने

की चेष्टा किसी व्यक्ति विशेष को नहीं, किन्तु जनता द्वारा संगठित और धर्म के अनुसार काम करने वाली अस्थायी राज-सत्ता को करना चाहिए।" जब कुछ मनहूस और बेवकूफ लोग पागलों की तरह बकते हैं कि हम राज-सत्ता-मात्र को बुरा बता रहे हैं, तो हमें शान्ति-पूर्वक बता देना चाहिए कि हम राज-सत्ता की जड़ को भली-भाँति समझते हैं। उसके मूल में सत्य है और हम उसके प्रधान भाव का पूरा सम्मान करते हैं। वह प्रधान भाव स्वतन्त्रता है।

द्वादश परिच्छेद
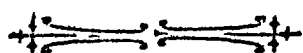
सशस्त्र प्रतिरोध

कुछ आपत्तियाँ।

[१]

विद्रोह का पक्ष पाठकों के सामने उपस्थित करने के बाद यह अनुचित न होगा कि हम इस विषय की आपत्तियों पर विचार करें। कई जिज्ञासु सिद्धान्त की इस स्पष्ट आलोचना से प्रसन्न होंगे, किन्तु कुछ चालाक विरोधी नीति की दुहाई देते हुए अथवा क्रान्तिकारियों का असम्बन्द्ध उल्लेख करते हुए उनकी हँसी उड़ावेंगे, सम्भवतः वे किसी बड़े आदमी के नाम की दुहाई दें या ऐतिहासिक घटनाओं का जबर्दस्त आसरा लें। यह विचित्र-सी बात है कि हम इस बात का तो ध्यान रखते हैं कि जब हम किसी व्यवहार-सिद्ध सिद्धान्त से लोगों की नज़र बचाना चाहते हैं तो गूढ़ तत्त्व की शरण लेते हैं, किन्तु यह बात अभी तक हमारे ध्यान में कम आई है कि जब हम किसी सिद्धान्त की सत्यता को अस्वीकार करने की चेष्टा करते हैं तो हम अपनी बातों का सहारा लेते हैं। ऐसे समय हमारी आँखों में प्रस्तुत और कष्ट-प्रद संकट, चाहे वह क्षणिक ही हो, ऐतिहासिक घटनाओं अथवा आने वाली विपत्ति से बड़ा मालूम पड़ता है। यह बात यदि हम

समझ जाएँ तो उक्त भ्रम में पड़े हुए मनुष्य को हम इस बात में सहायता देकर उसके दिल मे अपनी बात जमा सकते हैं कि स्थायी और अस्थायी हित में क्या भेद है। इस प्रकार आपत्तियो को हटा कर हम अपना पक्ष प्रबल कर सकते हैं।

[२]

ऐसा देखने मे आता है कि बिलकुल लापर्वा आदमी भी बहुधा सावधानी की दुहाई देते है। ऐसे लोगो को, जिनकी एकमात्र चेष्टा कठिनता से पिण्ड छुड़ाना होता है, जो आदमी कमजोरी छिपाने के लिए धैर्य्य पर व्याख्यान देते हैं, इस बात पर भली-भांति विचार करने की सलाह देनी चाहिए कि किस प्रकार उग्र, निष्कपटी पुरुष इन बहानेबाजियों से झुंझला धीरज को त्याज्य पदार्थ बतला कर उस पर अपनी सारी घृणा बरसाते हैं। ऐसी युक्ति सफल नही होती, यह कुछ काल के लिए उनका बड़प्पन घटा देती है। धैर्य दुर्बलो का नहीं किन्तु बलवान् आत्माओ का गुण है।

प्रतिपक्षी कहता है—"आपकी बातें बहस मे तो ठीक हैं किन्तु देखिए व्यवहार मे लोग किस प्रकार इनका दुरुपयोग कर रहे है।" यह दलील सुनकर इसका उचित उत्तर तुरन्त स्मरण हो आता है। डॉक्टर मुरे ने एक स्थान पर लिखा है—"किसी नैतिक सिद्धान्त का यह कह कर खण्डन नही किया जा सकता कि लापर्वा लोग उसका दुरुपयोग करते है अथवा यह कह कर कि यदि अमुक सभा मे या अमुक स्थिति मे उसका खुल्लमखुल्ला प्रचार किया जायगा तो हानि की सम्भावना है।" यह वाक्य

सर्वोत्तम है। सिवाय दूसरों के शब्द दुहराने के विरोधी इसका कोई ठीक उत्तर नहीं दे सकता। हम बालमेज्ञ के शब्दों में उससे कहेंगे—"लोगों से नीतिज्ञ बनने को कहते हुए हमें झूठे सिद्धान्तों की आड़ में छिपा नहीं रहना चाहिए। हमें सावधान रहना चाहिए कि जनता के दुर्भाग्य के रोष को शान्त करने के लिए हम ऐसी भ्रम-पूर्ण बातें न फैलायें जो सब सत्ता और समाज की जड़ खोखली करने वाली हो।" ('यूरोपियन सभ्यता', अ० ५५) ऐसे प्रश्नों की तह मे जाने से जो घबराते हैं उनके बारे में बाल-मेज़ लिखता है—"मैं नम्रता-पूर्वक कहूँगा कि ऐसे आदमियों की नीतिज्ञता व्यर्थ हो जाती है। उनकी दूरदर्शिता और सतर्कता किसी काम की नहीं रहती। वे इन बातों की जाँच करें या न करें उनकी जाँच हो चुकी, उनका मन क्षुब्ध है और वे उस मार्ग पर जिस तरह जा रहे हैं उसका हमें बड़ा खेद है।" ('यूरोपियन सभ्यता', अ० ५४)

फ्रान्स के पुराने राज्य में जनता को जो-जो कष्ट थे उन पर लिखता हुआ टर्नर नामक लेखक कहता है—"पुरोहितों का धर्म यह था कि वे न्याय और सहनशीलता का प्रचार करते, किन्तु जनता समझती थी कि वे भी उस राजा से मिल गये जिससे वह डरती थी और जिससे उसको बड़ी घृणा थी।" ('दर्शनशास्त्र का इतिहास', अ० ५९) बात यह है कि जब अन्याय और पाप का बोल-बाला होता हो तो उसका स्थायी राज्य नहीं होना चाहिए; उस समय कोई ऐसी कमज़ोरी न रहनी चाहिए जो पुण्य का रूप धारण कर सके। हम जिस बात का फौरन सामना नहीं कर सकते उसका खण्डन तो सदैव कर सकते हैं। इन बातों

की अवहेलना करना बुद्धिहीनता का सब से बुरा स्वरूप है—यह ऐसी अदूरदर्शिता है जिसे हम इस अवसर पड़ने पर कम-से-कम अपनी ओर से पूरे जोर के साथ अस्वीकार करते हैं।

[३]

क्रान्तिकारी शब्द का प्रयोग उसके अर्थ को बिना विचारे हुए किया जा रहा है। हमे सदा ध्यान रखना चाहिए कि यह शब्द परस्पर सापेक्ष अर्थ रखता है। यदि किसी जाति की स्वाधीनता बलात्कार और विश्वासघात से छीन ली गई है और उसके भूतकाल मे समृद्धिशाली रहे हुए देश में दमनकारी उपायों से काम लिया जा रहा है तो यह भी क्रान्ति है और बहुत बुरी क्रान्ति है। यदि अत्याचार से शासित और दमन के भार से उजड़ते हुए किसी देश के लोग उठ खड़े होते हैं और अपने स्वाभाविक साहस, उत्साह और धैर्य से पुरानी स्वाधीनता प्राप्त करके न्याय-पूर्ण शासन स्थापित करते हैं तो यह भी क्रान्ति है और अच्छी क्रान्ति है। क्रान्तिकारी का विचार उसकी नीयत, उसके साधन और उसके उद्देश्य से होना चाहिए और जब इन सब मे सत्य विद्यमान् रहता है तो उसका यह कार्य मेकिनटोस के शब्दो मे "सार्वजनिक पुण्य का कार्य" बन जाता है। इस कार्य से सत्य को मनुष्य समाज मे उचित आदर का स्थान मिलता है।

(४)

बालमेज ने बोसे के विषय में कहा है कि उसने उन अधि-कारो को अस्वीकार किया है जिनका यहाँ प्रतिपादन किया गया

है। इसलिए हम यहाँ बोसे के कुछ और वाक्य देंगे जो उसने किसी दूसरे प्रसंग पर कहे हैं, किन्तु जो हमारे विषय में लागू हो सकते हैं। साम्राज्य के विषय में बोसे लिखता है—

"Les revolutions des empiers sont reglees par la providence, et servent a humilier les princes"

अर्थात् साम्राज्य की क्रान्तियाँ विधाता द्वारा निर्दिष्ट की जाती हैं और इनसे राजाओं का मिजाज ठण्डा किया जाता है। इस वाक्य से हम स्वाधीनता का युद्ध करने मे रोके नहीं जा सकते। यदि हम और आगे बढ़ते हैं और वे बातें पढ़ते हैं जो उसने इसी शीर्षक में लिखी हैं तो हम उस वीरता, स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा देश-भक्ति की प्रशंसा ओजस्वी भाषा में देखते हैं जिसने प्राचीन यूनान और रोम का भेद बता रक्खा है। उसे पढ़कर कोई भी जाति स्वतन्त्रता के लिए उन्मत्त हो सकती है। स्वतन्त्र, अजेय और भ्रष्टताहीन यूनान के विषय में बोसे लिखता है—

"Mais ce que la Grece avait de plus grand etait une politique ferme et prevoyante, qui savait abandonner, hasarder et defendre, ce qu'il fallait, et ce qui est plus grand encore, un courage que l'amour de la liberte et celui be la patrie rendaient invincible"

अर्थात् यूनान मे सब से बड़ी बात यह थी कि उसकी राज-सत्ता दृढ़ और सुसज्जित थी। वह जानती थी कि कर्त्तव्य के लिए किस प्रकार त्याग किया जाता है, सर्वस्व की बाज़ी लगाई जाती है और उसकी रक्षा की जाती है। इन सब से बड़ी बात तो यह थी कि स्वातन्त्र्य-प्रेम और देश-भक्ति के कारण उनका साहस

अजेय था। निर्दोष रोम और उसकी स्वाधीनता के विषय में बोसे लिखता है—

"La liderte leur etait donc un tiesor qu'ils preferoient a toutes les richesses de l'univers."

अर्थात् स्वाधीनता उनके लिए इतनी अनमोल थी कि वे विश्व-की सारी सम्पत्ति उससे सामने तुच्छ समझते थे। बोसे फिर लिखता है—

"La. maxime fondamentale de la repu i que etait be regarder la libeite comme une chose inseparable du nom Roman"

अर्थात् रोमन प्रजातन्त्र का मूल भूत सिद्धान्त यह था कि वह स्वाधीनता को रोमन शब्द से अविच्छेद्य पदार्थ समझना था। देखिए, उसकी इस दृढ़ भक्ति का क्या परिणाम हुआ—

"Voila de fruit glorieux de la patience Romaine. Des peuples qui s'enhardissaient et se fortifiaient par leurs malheurs avaient bien raison de croire qu'on sauvait tout pourvu qu' on pneeibit pas l'esperance"

रोमन दृढ़ता का चकित करने वाला परिणाम देखिए। जो जाति अपने दुर्भाग्य के समय वीर और शक्तिशाली वन गई उसका यह विश्वास बिलकुल ठीक था कि जब तक वह आशा न खो बैठेगी तब तक वह सब कुछ कर सकती है। और सुनिए—

"Parmi eux, dans les etats les plus tristes, jamais les faidles conseils n'ont ete seluement ecoutes."

गिरी-से-गिरी दशा में भी उन लोगों में दुर्बलता-सूचक विचार कभी नहीं सुने गये। प्राचीन स्वाधीनता के इस सुन्दर गुण-गान को पढ़कर हमारी स्वाधीनता की इच्छा घटती नहीं, बल्कि हमारे अपूर्व इतिहास से हमें जो सहज उत्तेजन मिलता है वह बढ़ता है और हमारे कानों में यह आवाज़ गूँजती है—"लड़ते जाओ और विजय प्राप्त करो, निकट भविष्य में ही कट्टर शत्रु लड़ाई हो चुकने और विजय प्राप्त कर चुकने के बाद तुम्हारा उतना ही कट्टर प्रशंसक बन जायगा।"

[५]

हमने अटल सिद्धान्त निश्चित कर लिए हैं। व्यवहारिक परिस्थितियाँ क्षणिक और सदा बदलने वाली होती हैं। यह बात निम्न-लिखित अवतरणों में भली-भाँति स्पष्ट की गई है—"वर्तमानकाल में इतिहास और समाज-विज्ञान की बड़ी खोज के साथ उन्नति की गई है और इन्होंने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि देश और काल के अनुसार सामाजिक नियम बदलते रहते हैं, ये सामाजिक नियम बदलते रहने वाली कई घटनाओं के परिणाम हैं। इसलिए नैसर्गिक अधिकारों पर जो शास्त्र लिखा जाय उसमें मनुष्य के नैतिक उद्देश्य को लेकर अटल सिद्धान्त ही निश्चित नहीं किये जाने चाहिएँ किन्तु साथ-साथ उन अस्थायी परिस्थितियों का भी वर्णन करना चाहिए जो इन सिद्धान्तों को काम में लाते समय सामने आती हैं।" (डेउल्फ-कृत 'प्राचीन और नवीन भाग्य-शास्त्र', खण्ड २, अध्याय २) यदि हम सिद्धान्तों का व्यवहार कल करते हैं तो आज के नियम देखकर नहीं चलना चाहिए, किन्तु अचानक आ जाने वाली उन परिस्थितियों को देखना चाहिए जो इन्हें काम में लाते समय सामने

आती हैं। यह बात सब के ध्यान में जम जानी चाहिए। बीस साल पहले जो हालत थी आज वह बहुत बदल गई है। यह देखकर हमें समझ लेना चाहिए कि भविष्य में स्थिति बहुत बदल सकती है। बीस साल के छोटे अरसे में बड़े-बड़े परिवर्तन हो सकते हैं। १८४८ में आयर्लैण्ड असफल क्रान्ति और सफल क्षुधा-कातरता से चौपट हो चुका था। लोग निराशा से हर तरह दबे जा रहे थे, बीस साल बाद दूसरी बगावत संगठित की गई और इसने आयर्लैण्ड में अंग्रेजी सरकार की जड़ हिला दी। डेउल्फ एक स्थान पर लिखता है—"समाज-शास्त्र का व्यापक और विस्तृत अर्थ नैसर्गिक अधिकारों के शास्त्र के ढगों को बदल रहा है।" इस परिवर्तन की दृष्टि से वह मनुष्य बुद्धिमान है जिसकी दृष्टि भविष्य पर है। डेउल्फ के उस अन्तिम वाक्य का अनुमोदन करना चाहिए जहाँ वह सन्मुख उपस्थित होने वाली घटनाओं पर निष्पक्ष होकर विचार करने को कहता है; और लिखता है—"प्रत्येक प्रश्न का विचार उसके गुण-दोष देख कर करना चाहिए।" जो लोग आयर्लैण्ड को ब्रिटिश साम्राज्य से विच्छिन्न करने के पक्ष में हैं उन्होंने ही ऐतिहासिक घटनाओं से शिक्षा ग्रहण की है, उन्होंने सामयिक परिस्थिति को अस्थायी समझा है और भविष्य में अचानक आ जाने वाले संकटों पर विचार किया है। जिन लोगों ने इस विषय पर समझौता किया है वे अपने समय की परिस्थिति से घबरा गये थे। किन्तु किसी जाति के हजारों वर्ष के जीवन के इतिहास मे ब्रिटेन की पराधीनता अस्थायी और अचानक आ पडने वाली घटना है; **हमारा अखण्ड सिद्धान्त तो आयरिश जाति की स्वतन्त्रता है।**

त्रयोदश परिच्छेद
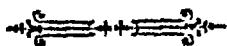
अन्तिम शब्द ।

(१)

सिद्धान्तो को सिद्ध करने और आक्षेपों का जवाब देने के बाद भी जो लोग हमसे अलग हैं—जिन लोगो ने दो देशों के बीच में पुल का काम दे रक्खा है उनसे अन्तिम निवेदन कर देना बाक़ी रह जाता है। वे लोग हमसे इसलिए अलग नहीं हैं कि वे भ्रम मे हैं किन्तु वे अपने सिद्धान्तों के दृढ़ भक्त हैं। वे सत्य के विषय में सन्देह में नहीं हैं किन्तु उसके रूप के विषय मे संदिग्ध हैं। ये वे साधारण आदमी नहीं हैं जिनके लिए मानवी-नियम बनाये जाते हैं, जिन्हें विजय का नैतिक निश्चय हो जाना चाहिए या जो यह चाहते हैं कि जनता तुरन्त उनकी बातों के सामने घुटने टेक दे। हमारे नेताओं और आश्रयहीन आशा पर डटे हुए सैनिकों की यह विशेष महिमा है कि साधारण आदमियों की पराजय से उन्हे आने वाले संग्राम के लिए उत्तेजन मिला है। जब वे अपने समय के विचारों के विरुद्ध खड़े हुए थे तो वे किस उद्धतता के कारण नहीं बल्कि बहुधा इसलिए कि उनकी अन्तरात्मा उन्हें बतला देती थी कि सत्य यह है और लोग इसे भूल गये हैं। वे अपनी आत्मा के तेज से लोगों को आगे बढ़ने का रास्ता दिखा गये हैं, उन्होंने बताया है कि भविष्य में देश की छिपी हुई कीर्ति का किस प्रकार उदय होगा। वे पहले से

ही जानते थे कि जनता अन्त में हमारा सिद्धान्त मानेगी और बिना ऐसा किये वह आगे बढ़ भी नही सकती। वे समझते थे कि हम सत्य के लिए लड़ रहे हैं और इसे कोई शक्ति हरा नहीं सकती; और जब उन्हे, लड़ाई-झगड़े, यंत्रणायें तथा कष्टसहन करने पड़े तो उन्हे इन बातों से उत्पन्न होने वाला वह सूक्ष्म ज्ञान था जिसे संसार के बड़े-से-बड़े महात्मा ही प्राप्त करते हैं—अर्थात् **जीवित रहना श्रेयस्कर है किन्तु धर्म-युद्ध में मरना भी उतना ही श्रेयस्कर है।** इसका अर्थ यह नही है कि वे जीवन को तुच्छ समझते थे या उसे योही गँवा देते थे; बल्कि जीवन की महत्ता उन से अधिक किसी ने न समझी थी; न उनसे अधिक जीवन की महिमा किसी ने गाई; जीवन-संगीत का प्रवाह उनसे अधिक किसी की नसो में नही दौड़ा। किन्तु वे उस महान् सत्य का मूल्य समझते थे जिसके न रहने से संसार उजड़ जाता है। वह सत्य यह है—**जो मनुष्य मरने से डरता है वह जीवित रहने का पात्र नहीं है** इस ज्ञान से संसार का सब से बड़ा भय उनके हृदय से निकाल दिया और जीवन में महान् आनन्द का समावेश कर दिया। और जब वे घोर विषाद के समय बड़े-से-बडा कष्ट सहने को उद्यत हुए तो उन्होंने समझा, जीवन का सच्चा सुख यही है और यदि कभी उन्हे मृत्यु का सामना करना पड़ा तो वे उससे घबराये नही। उन्हें सदा सहकारिता और प्रेम के उत्तम गुणों का पूर्ण ज्ञान रहा। उनके सुख और सफलता का एक रहस्य यह भी है कि वे जीवितावस्था मे मताधिकार प्राप्त करने और मरने पर स्मारक बनाने की इच्छा न रख कर देश का काम

करने के लिए पूरे तैयार रहते थे। अन्त में जब जागृत जाति अपने सहज स्वभाव, संयम, देशभक्ति और उत्साह से सेना में परिणत हो जायगी और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कूच करेगी तो पूर्ण विजय के अवसर पर वह समझेगी कि यह सेना उनके द्वारा विजयी बनाई गई है जिन्होंने जातीय विषाद के समय आशा की ज्योति जगा रक्खी थी।

[२]

सौभाग्य से जब हम संसार के सब से बड़े वक्ता के ओजस्वी भाषण की ओर दृष्टि डालते हैं तो उसके भाषण के उस अंश को देखकर जिसमें उसने उनका गुणानुवाद गाया है जिनका संसार सब से ज्यादा ऋणी है हमारा हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। अपने सर्वोत्तम भाषण मे यूनान के प्रसिद्ध वक्ता डिमॉस्थनीज ने प्रत्येक युग और जाति के उन वीरो का पक्ष प्रतिपादन किया है जो त्यक्त आशा को पकड़ कर लडते रहते हैं। एसकाइनीज नामक उसके एक विपक्षी ने आक्षेप किया कि डिमास्थनीज ने एथेन्स-निवासियों को ऐसी सम्मति दी कि उनकी हार हो गई। इसका उत्तर डिमॉस्थनीज यों देता है—"यदि देश परिणाम को पहले ही से जानता तो भी वह अपना कार्यक्रम नहीं छोड़ता, यदि उसे अपनी कीर्ति, प्राचीनता अथवा भविष्य का कुछ भी खयाल होता। हाँ, इस समय वह अपने पराक्रम मे असफल हो गया है। सफलता असफलता भगवान् की इच्छा पर निर्भर है।" डिमॉस्थनीज एथेन्स-निवासियो से प्रश्न करता है—"जिस पदार्थ को प्राप्त करने के लिए हमारे पूर्वजो ने सब संकटों का सामना किया यदि हम बिना उसके लिए युद्ध किये उसकी आशा ही

छोड़ देते तो क्या हम पर सारा संसार नह थूँकता ?" वह आगे कहता है कि उन परदेशियो का विचार कीजिए जो तुम्हारे देश मे आते हैं, तुम्हारी इस गिरी हुई हालत को देखकर क्या कहते होगे, "विशेषकर जब वे जानेगे कि प्राचीन समय में हमारे देश मे कीर्ति के लिए लड़े हुए संग्राम के सामने लज्जाजनक जीवन-रक्षा को कभी ऊँचा स्थान नही मिला है।" और वह बड़े गर्व के साथ इस उच्च विचार पर पहुँचता है—"कोई भी किसी समय हमारे राष्ट्र को शक्तिशाली और अन्यायी राजा की सुरक्षित आधीनता मे नही रख सकता। हमारे राष्ट्र ने सदा ही सम्मान और कीर्ति में सब से आगे बढ़ने के लिए भयंकर युद्ध में जूझने का प्रयत्न किया है।" डिमॉस्थनीज ने थेमिस्टॉक्लीज की स्मृति की दुहाई देते हुए अपने देशवासियो से कहा है—"उन्होने ऐसे वीर पूर्व-पुरुषो का सदा सम्मान किया है।' पुराने एथेन्स-निवासियों ने ऐसे वक्ता या सेनापति को अपना पथ-प्रदर्शक नहीं समझा जो उन्हे सुखप्रद पराधीनता की ओर ले जाय। यदि जीवन स्वतन्त्रता मे नही बीत सका तो वे उसे तुच्छ समझते थे।" डिमॉस्थनीज इस भाषण मे अपने श्रोताओं की प्रशंसा करते हुए कहता है—"मैं जिस बात की घोषणा करता हूँ वह यह है कि ये सिद्धान्त आपके अपने हैं। मै दिखाता हूँ कि हमसे पहली पीढ़ी के राष्ट्र में भी यही तेज विद्यमान् था।" एक-एक बात पर उसका तेज अधिकाधिक बढ़ता जाता है और अन्त में वह अपने ऊपर कटाक्ष करने के लिए एसकाइनीज को ललकारता है और जनता से निवेदन करता है—"एथेन्स के निवासियो! राष्ट्र की रक्षा और स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करके

तुमने कोई दोष का काम नहीं किया है; तुम्हारे जिन पूर्व-पुरुषों ने मरेथोन के संकट का मुकाबिला किया, जिन्होंने पलाटिया में शत्रु से लोहा लिया, जिन्होंने सालमिस में सामुद्रिक लड़ाई लड़ी, जिन्होंने आर्टीमिज़ियम में सर्वस्व होम किया तथा जो वीर सार्वजनिक स्मारकों के भीतर सोये हुए हैं उनकी शपथ खाकर मैं तुम्हें बताता हूँ कि इन सब को देश ने सम-सम्मान के योग्य समझा। एसकाइनीज़! हमारे पूर्वजों ने सफल और विजयी वीरों का ही सम्मान नहीं किया।"

हमारे नेता ओनील, टोन, ओडोनेल और मीचल की कीर्ति की धाक जमाने के लिए इन ओजस्वी वाक्यों की आवश्यकता नहीं है, किन्तु इनके पढ़ने से नई स्फूर्ति आ जाती है और ख़ून गरम हो जाता है। कैसे मर्मस्पर्शी वाक्य हैं! हम इनसे समझ जाते हैं कि यदि हम में तेज बना रहा तो हमारी वास्तविक विजय होगी। इस सत्याग्रही सिद्धान्त की हमने और हमारे पूर्वजों ने प्रशंसा की है; यह मानवी हृदय का स्थायी सिद्धान्त है कि वह महान् कार्य की प्रशंसा करे और शारीरिक पराजय से ऊपर उठे। इस दृष्टि से हम उस शिला-लेख का अर्थ समझते हैं जिसके विषय में रस्किन ने कहा है कि वह संसार का अद्वितीय शिला-लेख है, जिसके विषय में हिरोडोटस ने कहा है कि वह स्पार्टा के उन वीरों की कब्र पर खोदा गया है जो थर्मापोली में वीर गति को प्राप्त हुए और जिसे मीचल के जीवनी-लेखक ने मीचल की जीवनी का बहुत उपयुक्त संक्षिप्त सार-स्वरूप समझ कर उद्धृत किया है। वह शिला-लेख यह है—"हे बटोही! तुम लसीडिमोनियन लोगों से कहो कि उनकी आज्ञा शिरोधार्य

करके हम यहाँ पड़े हुए हैं।" मीचल की जीवनी के लेखक ने बहुत ही उचित कहा है कि जो इन वीरता-पूर्ण पंक्तियों का भीतरी अर्थ समझता है वह इनसे पराजय का नहीं किन्तु विजय का संदेश पाता है।

[३]

अपने आदर्श-रूप इन महात्माओं का उचित गुणानुवाद करते हुए हमें यह भी उचित है कि हम अपने को इस महान् परम्परा के वारिस समझें। हमारे अनुरूप बात तो यह है कि जो झंडा हमारे हाथ मे है हम उसकी शान ही लोगों को न दिखावें किन्तु यह भी सिद्ध करें कि हम उसे फहराने के योग्य हैं, क्योंकि उसकी विजय और उसका सम्मान इस बात पर निर्भर है कि हम उसकी महत्ता कहाँ तक समझते हैं; उसकी विजय इस विचार पर निर्भर है कि हमे सदा और सर्वत्र उसके लिए लड़ना चाहिए, उसकी विजय इस ज्ञान पर भी निर्भर है कि न मालूम किस समय हम उसे फेंक देने के लिए ललकारे जाँय, वह इस विश्वास पर भी निर्भर है कि हम अपने व्यवहार से उसकी कीर्ति और साख बढ़ा सकते हैं अथवा उसे बदनामी की ओर खीच ले जा सकते हैं। मैं कहूँगा कि हमें यह बात भली-भांति समझ रखनी चाहिए; क्योंकि **आजकल प्राचीन समय के पुरुषों की प्रशंसा करना और उनकी स्वतंत्रता के आदर्श को न मानना एक आम रिवाज-सा बन गया है।** हम—जो इस प्राचीन तेज से ही जीवित हैं, जो इसका प्रचार करते हैं, इसके लिए लड़ते है और कहते हैं कि अन्त मे उसकी पूर्ण विजय होगी—रंगरूट मूर्ख और अव्यवहारी बताए जाते हैं। हम इस

का क्या उत्तर देते हैं ? हमारा उत्तर हमारे पक्ष, उसके इतिहास और उसके भविष्य के अनुकूल है जो हमारी हँसी उड़ाते हैं या हमारे ऊपर तरस खाते हैं। उन्हें देखना चाहिए कि हम उनके पक्ष को तुच्छ समझते हैं और घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यदि हमारे चुनाव से उनमें कोई भ्रम न फैला हो तो वे हमारे कामों से जान सकते हैं कि झंझट न रहने पर हम उच्च-से-उच्च पदों के लिए योग्यता के साथ खड़े हो सकते हैं।

× × × ×

हमें अपने पक्ष की उन्नति के साथ-साथ महान् बनना है। क्या हम नीचता-पूर्वक क्षमा-याचना करके इस झंडे का आदर कर सकते हैं ? कदापि नहीं। जहाँ कहीं यह गिरा हुआ होगा हम इसे उठायेंगे, जहाँ कहीं इसे ललकारा जायगा हम इसे और ऊँचा फहरायेंगे, जहाँ कहीं यह गाड़ा हुआ होगा हम इसका अभिवादन करेंगे, जहाँ कहीं यह विजयी होगा हम इसकी कीर्ति गायेंगे और आनन्द मनायेंगे। हम सदैव इसके नामपर गर्व करेंगे, उत्साह दिखलायेंगे, प्रयत्न करते रहेंगे, आनन्द मनायेंगे और दूसरों की आज्ञा का उल्लंघन करेंगे। हम इसके लिए सुप्त स्मृतियों को जागृत करेंगे, बुझती हुई आग में फिर घी डालेंगे, जनता के सत्य विचारों को पुनर्जीवित करेंगे। इस प्रकार सबमें पुराना तेज भर देंगे—वह तेज भर देंगे जो कभी हार स्वीकार नहीं करता, जिसकी महिमा का बखान हजारों वीर कर चुके हैं, जिसे आयरिश देश-भक्त एमेट ने एक पंक्ति के भीतर अति सुन्दर रूपसे व्यक्त किया है। वह लिखता है-"जब मेरा देश संसार के

राष्ट्रों में अपना उचित स्थान ग्रहण करे तब मेरी कब्रपर कुछ लिखा जाना चाहिए, अन्यथा नही।" उसने 'यदि' नहीं कहा किन्तु 'जब' कहा। इसका मतलब यह है कि यह बात अनिश्चित नहीं किन्तु निश्चित है। प्रत्येक युग में ऐसे आदमी पैदा हुए हैं और आज भी वर्तमान हैं, जिनकी समझ मोटी और हृदय निष्ठुर होने से वे इस बातपर विश्वास नही करते, किन्तु हम इसपर विश्वास करते है, हम इसके सहारे जीवित हैं, और इसे भली-भाँति समझते हैं। हम इसे ठीक एमेट की भाँति समझते हैं और भविष्य हमारी यह बात सिद्ध कर देगा। कार्य सिद्ध हो चुकने-पर जब इतिहास-लेखक इतिहास लिखेगा तो उसे हमारी सफलता पर आश्चर्य होगा। उसे तो इस बातपर आश्चर्य-चकित होना पड़ेगा कि हमारी आत्मा सदा दृढ़ बनी रही, हमने निर्दोष यूनान और रोम के समय के उत्तम गुणों से टक्कर ली, हम आपत्तियो, यंत्रणाओं और अत्याचार को सहकर भी डटे रहे, नीम-भाव-पूर्ण समय मे हम किसी के फुसलावे में न आये, ऐसे सब कष्ट झलते हुए हम अपना उद्देश्य स्पष्ट रूपसे देखते रहे। इतिहास-लेखक यह सब बाते लिखेगा और आश्चर्य मे पड़कर गर्व और आनन्द के साथ उस लक्ष्य को देखेगा जिसे अदम्य उत्साह ने प्राप्त किया है। उस लक्ष्य के विषय में वह लिखेगा:—

"स्वाधीनता अनिवार्य थी।"

इन दो शब्दों मे उस जाति का सारा इतिहास आ जायगा जो संसार के इतिहास में अपना सानी नहीं रखती।

॥ इति ॥

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर.

स्थापना सन् १९२५ ई०; मूलधन ४५०००)

उद्देश्य—सस्ते से सस्ते मूल्य में ऐसे धार्मिक, नैतिक, समाज सुधार सम्बन्धी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैय्यार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्रीस्वातंत्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला (सभापति) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र-निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालाएँ प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र-निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार, ग्राम-संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक होने के नियम

(१) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। (२) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। (३) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फ़ीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपिया। (४) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछले वर्षों में प्रकाशित सभी या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति ग्राहकों को लागत मूल्य पर मिल सकती है। (५) माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होता है। (६) जिस वर्ष से जो ग्राहक बनते हैं उस वर्ष की सभी पुस्तकें उन्हें लेनी होती हैं। यदि उस वर्ष की कुछ पुस्तकें उन्होंने पहले से ही ले रखी हों तो उनका नाम व मूल्य कार्य्यालय में लिख भेजना चाहिए। उस वर्ष की शेष पुस्तकों के लिए कितना रुपिया भेजना चाहिये, यह कार्य्यालय से सूचना मिल जायगी।

सस्ती-साहित्य-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (महात्मा गांधी) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≡) सर्वसाधारण से ॥)

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए० एल० टी०) पृष्ठ १३२ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)

(३) दिव्य जीवन—पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ।=) ग्राहकों से ।) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री रत्न—(पाँच भाग) इस में वैदिक काल से लगाकर आज तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पतिव्रता, विदुषी और भक्त कोई ५०० स्त्रियों की जीवनी होगी। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मू० १) ग्राहकों से ॥।) दूसरा भाग दूसरे वर्ष में छपा है। पृष्ठ ३२० मू० ॥।-)

(५) व्यावहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के उपयोगी व्यावहारिक शिक्षाएँ। पृष्ठ १२८, मूल्य ।)॥ ग्राहकों से ≡)॥

(६) आत्मोपदेश—पृष्ठ १०४, मू० ।) ग्राहकों से ≡)

(७) क्या करें? (टॉलस्टॉय) महात्मा गांधी जी लिखते है—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)

(८) कलवार की करतूत—(नाटक) (ले० टालस्टाय) अर्थात् शराबखोरी के दुष्परिणाम; पृष्ठ ४० मू० -)॥। ग्राहकों से -)।

(९) जीवन साहित्य—(भू० ले० बाबू राजेन्द्रप्रसादजी) काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग-पृष्ठ २१८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=)

प्रथम वर्ष में उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की निकली है

सस्ती-साहित्य-माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) तामिल वेद—[ले० अछूत संत ऋषि तिरुवल्लुवर] धर्म और नीति पर अमृतमय उपदेश—पृष्ठ २४८ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

(२) स्त्री और पुरुष [म० टाल्सटाय] स्त्री और पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आदर्श विचार—पृष्ठ १५४ मू० ।=) ग्राहकों से ।)

(३) हाथ की कताई बुनाई [अनु० श्री रामदास गौड़ एम० ए०) पृष्ठ २६० मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥ इस विषय पर आई हुई ६१ पुस्तकों में से इसको पसंद कर म० गांधीजी ने इसके लेखकों को १०००) दिया है।

(४) हमारे ज़माने की गुलामी (टाल्सटाय) पृष्ठ १०० मू० ।)

(५) चीन की आवाज़—पृष्ठ १३० मू० ।-) ग्राहकों से ≡)॥

(६) द० अफ्रिका का सत्याग्रह—(दूसरा भाग) ले० म० गांधी पृष्ठ २२८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(७) भारत के स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ लगभग ३२० मू० ॥।-) ग्राहकों से ॥≈) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(८) जीवन साहित्य [दूसरा भाग] पृष्ठ २०० मू० ॥) ग्राहकों से ।≈) इसका पहला भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

दूसरे वर्ष मे लगभग १६५० पृष्ठों की ये ८ पुस्तकें निकली है

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५२, मू० ।=) ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—पृष्ठ १२४ मू० ।-) ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा—पृष्ठ सं० ९४, मू० केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—पृष्ठ २६४, मू० ॥-) ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—पृष्ठ २०८ मू० ॥) ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्म्मा विद्यालंकार) भू० ले० पं० पद्मसिंहजी शर्मा पृष्ठ १७६, मू० ।≡) ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविन्दसिंह (ले० चण्डीचरणसेन) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों और उनके कारिन्दों की काली करतूतें और देश की विनाशोन्मुख स्वाधीनता को बचाने के लिए लड़ने वाली आत्माओं की वीर गाथाओं का उपन्यास के रूप में वर्णन—पृष्ठ २८० मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

(८) स्वामीजी [श्रद्धानंदजी] का बलिदान और हमारा कर्तव्य [ले० पं० हरिभाऊ उपाध्याय] पृष्ठ १२८ मू० ।-) ग्राहकों से ।)

(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास [प्रथम भाग] यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का तथा जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है। प्रत्येक भारतवासी को यह ग्रन्थ रत्न पढ़ना चाहिये। पृष्ठ ३६६ मू० ॥=) ग्राहकों से ॥-)

प्रथम वर्ष में १७६२ पृष्ठों की ये ९ पुस्तकें निकली हैं